अखण्ड-साधना

अप्रैल 2008

ब्रह्मलीन श्री 1008 स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज

योग निकेतन ट्रस्ट

मुनि–की–रेती, ऋषिकेश (हिमालय) 249 192
दूरभाष: (0135) 2430227, 2435072
Fax: 91-0135-2442332
Website: www.yoganiketanashram.org E-mail: info@yoganiketanashram.org

इस मुख पत्रिका में सात मुख्य स्तम्भ हैं-

(1) योग, (3) आध्यात्मिक तत्व-चिन्तन (3) धर्म व संस्कृति (4) महापुरुष प्रसंग (5) ज्ञान, (6) भक्ति (7) स्वास्थ्य रक्षा आदि

उद्देश्य और नियम

प्रस्तुत 'अखण्ड-साधना' द्विमासिक मुख पत्रिका योग निकेतन ट्रस्ट आश्रम के तत्वाधान में सम्पादित तथा प्रकाशित की जाती है। इसमें आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान, धर्म-संस्कृति तथा योगादिक मोक्षसाधनाओं का ही विशेषकर प्रतिपादन होता है और उन्हीं का प्रचार व प्रसार इनका मुख्य उद्देश्य है।

पत्रिका के ग्राहक-सदस्य विशेषकर जनवरी से ही बनाये जाते हैं। परन्तु किसी वर्ष के किसी भी महीने में ग्राहक-सदस्य बन सकते हैं और उस वर्ष के जनवरी से लेकर सभी अंक ग्राहक को भेज दिये जाते हैं। प्रकाशनार्थ आये हुए लेखों को आवश्यकतानुसार घटाने बढ़ाने तथा अमननीत लेखों को न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। अन्य लेखों में प्रकाशित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा।

वार्षिक शुल्कः- 150/-

सम्पादकः- स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती

योग निकेतन ट्रस्ट द्वारा पंजीकृत

रूल के अनुसार सुशील शर्मा
द्वारा बालाजी ऑफसेट प्रिंटर्स, ऋषिकेश से मुद्रित कराकर
योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि-की-रेती, ऋषिकेश 249 192 से प्रकाशित
Website : www.yoganiketanashram.org
E-mail : info@yoganiketanashram.org
Fax - 0135 - 2442332

विषय - सूची

ENGLISH SECTION

योग निकेतन ट्रस्ट आश्रम, ऋषिकेश

सदस्यों, आजीवन सदस्यों तथा दानदाताओं हेतु नियम एवं अधिनियम 01.4.2008 से संशोधित प्रशासन के बढ़ते हुए खर्चे को देखते हुए एवं सदस्यों के उच्च सुविधाओं की उपलब्धता के कारण प्रशासन ने साधारण, आजीवन सदस्यों और दान–दाताओं के शुल्क में 01.4.2008 से व द्धि की है।

1. साधारण सदस्यों के वार्षिक शुल्क में व द्धि करके अब 1000/– रुपया कर दिया गया है। वे वर्ष में 3 दिन निःशुल्क आतिथ्य की सुविधा ले सकते हैं। (निजि परिवार सहित)

2. समस्त आजीवन सदस्य एक वर्ष में 4 दिन निःशुल्क आतिथ्य की सुविधा (निजि परिवार सहित) ले सकते हैं। आजीवन सदस्यों की सदस्यता शुल्क की व द्धि करके तीस हज़ार रुपये कर दिया गया है।

3. जिन दान–दाताओं ने दान देकर कमरे अथवा कॉटेज का निर्माण कराया है। वे दान–दाता 15 दिन की निःशुल्क आतिथ्य की सुविधा ले सकते हैं (निजि परिवार सहित)।

<u>नोटः-</u>

1– वार्षिक उत्सव के तीन दिन 11, 12 और 13 अप्रैल 3 दिन हमेशा निःशुल्क आतिथ्य में गिने जायेंगे और वे तीन दिन उसी में गिने जायेंगे इसके बाद शुल्क देकर आतिथ्य स्वीकार किया जा सकता है।

2– निःशुल्क आतिथ्यः– सुसज्जित एवं समस्त सुविधाओं से युक्त–क़मरा, नाश्ता, दोपहर का भोजन, शाम की चाय और रात्रि का खाना उपरोक्त सभी घर जैसा। प्याज एवं लहसुन पूर्ण वर्जित है।

3– आश्रम के नियमानुसार सिक्योरिटी का पूर्ण पालन करना होगा आते और जाते समय सिक्योरिटी गेट पर रखे हुए रजिस्टर में हस्ताक्षर और समय लिखना होगा।

4– निःशुल्क आतिथ्य सुविधा पाने वाले आश्रम को साफ–सुथरा रखने में सहयोग देंगे।

5– आश्रम में कोई शोर–गुल नहीं होना चाहिये।

6– आश्रम की किसी टूट–फूट, चोरी आदि के लिये जिम्मेवार व्यक्ति को भुगतान करना होगा।

7– कोई कमी और शिकायत के लिये मैनेजिंग ट्रस्टी को लिखें।

8– किसी प्रकार की छूट के लिये स्वामी सेनापति जी से सम्पर्क स्थापित करें ।

9– निःशुल्क आतिथ्य के बाद आश्रम के नियमानुसार भुगतान देना होगा।

10– आश्रम में प्रवेश का अधिकार प्रबन्धक वर्ग के पास सुरक्षित है।

आश्रम समाचार

योग निकेतन का वार्षिक महोत्सव

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी 2008 अप्रैल 11, 12, 13 तारीख तक वैशाखी के अवसर पर योग निकेतन आश्रम, मुनि की रेती ऋषिकेश में वार्षक महोत्सव का आयोजन किया गया है। इस समारोह में बड़े बड़े विद्वान, महात्मा–वक्ता पधारेंगे और उनके सारगर्भित व्याख्यान होंगे। केवल यही नहीं उक्त तीन दिन तक वेद रत्न आचार्य श्री सत्यव्रत राजेश जी ज्वालापुर (हरिद्वार) वाले के ब्रह्मात्व में सामवेद पारायण महायज्ञ भी सम्पन्न होगा।

अतः साधक जिज्ञासुजनों से निवेदन है कि उस अवसर पर आश्रम में पधार कर सत्संग का लाभ उठाएं।

निवेदक
योग निकेतन ट्रस्ट
मुनि–की–रेती, ऋषिकेश

''सहयोग''

अखण्ड साधना हमारी आध्यात्मिक व सांस्क तिक द्विमासिक पत्रिका है। इसे सुद ढ़ व स्वावलम्बी बनाने हेतु आपके विज्ञापन के योगदान की आवश्यकता है। प्रति अंक एक पन्ने की छपाई खर्च 500/– रूपये, आधे का 300/– रू० का चौथाई का 150/– रू० आता है। क पया अपने विज्ञापन व विज्ञापन निधि आश्रम में भेजकर सहयोग करें।

"SUPPORT"

Patrika is our spiritual and cultural bi-monthly magazine. make it strong and self supporting by sending your advertisement.

Cost of one page advertisment is Rs. 500/- half page Rs. 300/- and quarter page is Rs. 150/-. Please book your advertisment and send payment.

Those who have not subscribed for their annual subscription of AKHAND SADHNA PATRIKA and annual membership subscription are requested to send the same at their earliest possibility.

अखण्ड साधना के प्रकाशन में सूचना फार्म 4 रूल के अनुसार

प्रकाशन स्थान	:	योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश–249 192
प्रकाशन अवधि	:	द्विमासिक
मुद्रक का नाम व पता	:	बालाजी ऑफसेट प्रिन्टर्स, ऋषिकेश
प्रकाशक	:	श्री सुशील शर्मा
सम्पादक	:	स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
स्वामित्व	:	योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि–की–रेती, ऋषिकेश 249 192

मैं सुशील शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये विवरण सब सत्य है।

ॐ

महापुरुष विशेषांक

सम्पादकीय

केतुं क ण्वन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथा।। ऋक्. १/६/३।।

हे (मर्याः), मरणधर्मा मनुष्यों! (अ–केतवे) ज्ञानहीन अज्ञानी मनुष्य के लिये (केतुं) ज्ञानरूप प्रकाश (क णवत्) देता हुआ प्रदान करता हुआ और (अपेशसे) अज्ञानरूप अरूप–विरूप–कुरूप के लिये (पेशः) विद्यारूप सुन्दर रूप को देता हुआ तू (उषद्भिः) ब्रह्मविद्यादि से सम्पन्न प्रकाशमान प्रसिद्ध महान् लोगों के साथ (अजायथा) सुप्रसिद्ध हो महिमान्वित हो।

भावार्थः- इस मन्त्र में सन्त–महापुरुष का लक्षण घटित हो रहा है। क्योंकि मनुष्य जीवन का एकमात्र उद्देश्य है अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति कर लेना। इसीलिये प्राणी को मनुष्य जीवन मिलता है। अतः प्रथम स्वयं अपने पुरुषार्थ के द्वारा साधन सम्पन्न होकर प्रज्ञानवान तथा ब्रह्मानुभूति को प्राप्त करें उसके बाद फिर संसार के अज्ञानी मनुष्यों को ज्ञान प्रदान करें, उन्हें भी ज्ञानवान् प्रज्ञावान् बनायें। ज्ञान ही मनुष्यों में सुन्दरता लाता है और अज्ञान कुरुपता को प्रदर्शन करता है। अतः जिस प्रकार सूर्य का उदय होने पर अन्धकार दूर भाग जाता है ठीक उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान का उदय होते ही अज्ञानरूप अन्धकार दूर हो जाता है और सबको प्रकाशित कर देता है। परन्तु वह ज्ञान कैसा है? भौतिक ज्ञान या व त्तिज्ञान नहीं किन्तु आध्यात्मिक ज्ञान या ब्रह्मज्ञान है। ब्रह्मज्ञान अपने आप प्राप्त नहीं होता ब्रह्मविद् गुरु के पास जाना पड़ता है। इसलिये श्रुति में कहा भी है कि–

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।। मुण्डक. १/२/१२।।

यदि ब्रह्म की जिज्ञासा हो तो समित्पाणि होकर गुरु के पास जाय। कैसे गुरु के पास जाना चाहिये? 'श्रोत्रियम्' जो वेद–शास्त्रों को जानने वाला हो ऐसे योग्य गुरु के पास जाना चाहिये। परन्तु गुरु केवल श्रोत्रिय होना ही पर्याप्त नहीं है किन्तु 'ब्रह्मनिष्ठम्' ब्रह्म में निष्ठावाला भी होना चाहिये। ऐसा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु से ब्रह्मात्मा सम्बन्धी जिज्ञासा करनी चाहिये और ऐसा ब्रह्मविद् गुरु से उपदेश ग्रहण करने से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त बन जाता है। केवल यही नहीं किन्तु मोक्ष

का भागी भी वही बन जाता है।

सन्त–महापुरुष को ही महात्मा कहते हैं। महात्मा का तात्पर्य है– 'महान् आत्मा यस्य' वही महात्मा है। महात्मन् शब्द दर्शन शास्त्र में इसका प्रयोग सर्वातिशयी तथा ऐकान्तिक आत्मा अथवा विश्वात्मा के लिये होता है। यद्यपि सन्त–महात्माओं के लिये शास्त्रों में अनेक लक्षणों का निर्देश है तथापि वस्तुतः महात्मा या महापुरुष समस्त लक्षणों से ऊपर होते हैं। किसी भी लक्षण के द्वारा कोई भी विषयी पुरुष सिद्ध महापुरुषों का पहचान नहीं कर सकता। वस्तुतः जिसने जिस वस्तु की उपलब्धि ही नहीं की है, वह केवल उसका नाम सुनकर ही कैसे उसके असली या नकली होने का निश्चय कर सकता है, अर्थात् नहीं कर सकता। जिसने हीरा देखा ही नहीं वह बेचारे हीरे और कांच के अन्तर को कैसे पहचान सकता है या कैसे जान सकता है?

सन्त–महापुरुष ही सभ्यता, संस्क ति, धर्म तथा राष्ट्र के मूल–श्रोत हुआ करते हैं। महापुरुष किसी भी देश या राष्ट्र के हो एक महान् आदर्श में प्रतिष्ठित होते हैं। इनके द्वारा ही सभ्य–मानव समाज का गठन होता है, समाज का निर्माण और रक्षण होता है। विश्व–कल्याण के लिये वे सदा ही चिन्तित रहते हैं और राष्ट्र के हित के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

अतः महापुरुष संज्ञा उन्हीं को दी जा सकती है कि साधना के द्वारा जिनकी अर्न्तद ष्टि खुल गयी है, जो स्वयं सन्त–महापुरुष भाव पर आरुढ़ हो गये हैं, वे अवश्य ही अपनी विवेक शक्ति के द्वारा असत् से सत् को प थक रूप में ग्रहण कर सकते हैं। जिनका आश्रय लेकर हम अन्धकार से ज्योतिर्मय राज्य में प्रवेश करना चाहते हैं और सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं, वे यदि स्वयं वैसे आधार पर प्रतिष्ठित न हो तो उनके आश्रय से हमारी हानि के सिवाय कोई भी इष्ट सिद्धि नहीं हो सकती– यह निश्चित् है। वह तो मानो 'अन्धेन नीयमाना यथान्धा' वाली बात बन जायेगी। अतः महापुरुष कहने से यही समझा जाता है कि जो सत्य स्वरूप, नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुके हैं अथवा अपरोक्ष रूप में उपलब्ध कर चुके हैं और इस उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्यस्वरूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं वे ही सन्त–महापुरुष हैं। सत्य ही चैतन्य स्वरूप है और चैतन्य ही आनन्दस्वरूप भी है, अतएव जो सत्य में प्रतिष्ठित है वे वास्तव में सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित है। इसलिये जो ब्रह्मज्ञ हैं, ब्रह्मदर्शी है और ब्रह्मसंस्थ है वे ही महापुरुष है।

जिन्होंने सत्य को उपलब्ध किया है, वे अवश्यक प्रतीत होने पर दूसरे को भी उपदेश दिया करते हैं। यह उपदेश श्रेष्ठ अधिकारी को प्रातिभ ज्ञान के रूप में दिया जाता है। यह प्रातिभ ज्ञान अपने आप ही हृदय में उत्पन्न हुआ करता है। इस प्रकार के विशुद्ध ज्ञान के द्वारा ही हृदय का संशय सम्यक् प्रकारेण दूर हो जाता है। ऐसे सन्त–महापुरुषों का लक्षण बतलाते हुए शास्त्र में कहा है कि–

'शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनाः
न हेतुनान्यानपि तारयन्तः।।' विवेक चूड़ामणि. ३७।।

अर्थात् बसन्त ऋतु के समान अपना किसी प्रकार का स्वार्थ न रखते हुए केवल परोपकार बुद्धि से अन्य लोगों के हित करने वाले, शान्त चित्त, उदार हृदय, स्वयं भवसागर से पार उतरे जीवन्मुक्त हुए बिना निःस्वार्थ दूसरों को भी भवसागर से उतारने वाले ऐसे सन्त–महापुरुष इस जगत् में निवास करते हैं। हे जिज्ञासुजन! ऐसे महापुरुष के पास जाकर अपने आत्मकल्याण के लिये मार्ग दर्शन प्राप्त करो। जिस प्रकार नदी में डूबते हुए लोगों के लिये सुद ढ़ नौका के समान इस भयानक संसार रूपी समुद्र में गोते खाने वालों के लिये ब्रह्मवेत्ता प्रशान्तचित्त सन्त–महापुरुप ही परम अवलम्बन है अर्थात् सहारा है। श्रुति में भी जोरदार शब्दों में कहा है कि–

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।कठ. १।३।१४।।

अरे ओ संसार के माया–मोह रूप महानिद्रा में सोये पड़े हुए मनुष्यों! उठो, जागो और ब्रह्मविद् महान् पुरुषों के समीप जाकर जिज्ञासा करके ज्ञान प्राप्त करो। इससे मोक्ष का मार्ग खुल जायेगा। जिस प्रकार छूरे की धार तीक्ष्ण और महादुस्तर होती है तत्वज्ञानी महापुरुष भी उस मार्ग को वैसा ही अत्यन्त दुर्गम बतलाते हैं। परन्तु जो उस दुस्तर मार्ग को पार कर उस परमतत्व को प्राप्त कर लेता है उसका जीवन धन्य बन जाता है वह जीवनमुक्त बन जाता है। ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष का लक्षण श्री मद्भागवत् पुराण में श्रीक ष्णचन्द्र भगवान् ने उद्धव को उपदेश देते हुए कहा है। यथा–

सन्त–महापुरुष सब पर दया करने वाला होता है। किसी से द्रोह न करने

वाला, तितिक्षु, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला, निन्दादि दोषों से रहित सुख–दुःखादिक द्वन्द्वों से समान भाव रखने वाला होता है। सबका उपकार करने वाला विषयों से विचलित न होने वाला, जितेन्द्रिय, कोमल चित्त, निर्मल ह्रदय, पवित्र मन, अकिंचन, निष्कामी, मितभोजन करने वाला, शान्त, स्थिर, भगवत् परायण, मननशील, सावधान, गम्भीर, भयंकर विपत्ति में भी धैर्य धारण करने वाला होता है। भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और म त्यु– इन छहों विकारों को जितने वाला, दूसरों को मान देने वाला, कार्यों में दक्ष, सबसे मैत्री रखने वाला, कारुणिक और क्षमावान् हुआ करता है। ऐसे सिद्ध ज्ञानी पुरुष ही महापुरुष कहलाते हैं। केवल यही नहीं किन्तु और भी कहा है। यथा–

नित्य सत्य परमात्मा स्वरूप में स्थित रहने वाला, सर्वत्र, समद ष्टि तथा जीवमात्र में समभाव रखने वाला, राग, द्वेष, काम, क्रोध और लोभ तथा अभिमानादि मानसिक दोषों का एवं मान–बढ़ाई, प्रतिष्ठा आदि को परित्याग करने वाला, स्वाभाविक ही सभी प्राणियों के प्रति हित साधन की भावना या रूचि, निष्कामभाव, निरहंकार, निर्ममता, स्वाधीनता, क्षमाभाव, तप–त्याग आदि सद्‌गुण सदाचारादि से सम्पन्न और हर–समय प्रतिक्षण अखण्ड–असीम ब्रह्मानन्द में मग्न रहने वाला ही महापुरुष कहलाता है। ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष के लिये शास्त्र मे कितना सुन्दर कहा है देखिये–

'कुलं पवित्रं जननी क तार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरे स्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्यचेतः।।'स्कन्दपुराण।।

जिसका चित्त अपारसंवित्सुखसागर रूप परब्रह्म में लीन है, ऐसे ब्रह्मविद पुरुष के जन्म से कुल–वंश पवित्र हो जाता है, उसका जन्म देने वाली जननी भी क तार्थ हो जाती है और यह वसुन्धरा रूप प थ्वी भी पुण्यवती बन जाती है।'

अंतः स्पष्ट है कि ऐसे ब्रह्मनिष्ठ जीवन्मुक्त पुरुष ही महापुरुष कहा जाता है अन्य नहीं। इस प्रकार से स ष्टि के आदिकाल से अब तक न जाने कितने ही जीवन्मुक्त महापुरुष हो गये इनकी कोई गणना ही नहीं है। केवल हमारे भारतवर्ष में ही महापुरुष हुए हैं ऐसी बात नहीं सभी देशों में महापुरुष हुए हैं। उन सबका जीवन व तान्त प्रस्तुत करना हमारा उद्‌देश्य नहीं है और ना ही वह सम्भव ही है। वह तो ऐसा ही है कि जैसे गन्धर्वराज श्री पुष्पदन्त ने शिवमहिम्नः स्तोत्र (३२) में कहा है– 'हे परमेश्वर! यदि नीलंजन पर्वत के बराबर स्याही हो, सागर

दवात हो, कल्पवक्ष की शाखा लेखनी (कलम) हो, पथ्वी पत्र (कागज) हो और अनादि अनन्तकाल तक सरस्वती उसे लेकर लिखती रहे तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती अथवा आपके गुणातीत रूप को नहीं पा सकती। ऐसी स्थिति में इतने महापुरुषों का जीवन लिखकर कौन पार पा सकता है अर्थात् कोई नही। परन्तु महापुरुषों का थोड़ा सा कपा प्रसाद भी मनुष्य को संजीवनी का काम देता है। अतः इस संदर्भ में कतिपय महापुरुषों का ही संक्षिप्त जीवन वेतान्त प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। ○

—*विज्ञानानन्द*

पाँच नशों की कान्फ्रेंस

अब आप इन सबकी भी सुन लीजिये।

१. **श्रीमती भाँग का भाषणः-** जो भी भाँग का सेवन करते हैं पेट अपना वे खूब भरते हैं, वह हरदम रहते लापरवाह न घर की चिन्ता करते हैं। जो कभी बादाम न खाते हैं उससे रगडा लगवाती हूँ, मिश्री बादाम मिला करके मैं उसको मस्त बनाती हूँ।

२. **बीबी अफीम के भाव सुनियेः-** गुस्से में कहा अफीम ने यह क्यों लोगों को बहकाते हो, भाँग और शराब की झूठी बातों में क्यों आते हो। छोटी इक बना गोली पानी से ले लो तुम मुझको, कम खर्च, अगर कब्ज हो जाय एक बार दे तुम उसको।

३. **मिस्टर गाँजा- सुलफा- चरस साँझा मोर्चाः-** बारी—२ गाँजा सुलफा चरस ने यह बतलाया है, जो करे हमारा सेवन उसने अपना खून जलाया है। खून और वीर्य को नष्ट करें हम रोगी उन्हें बनाते हैं, आयु हो जाए कम उसकी जल्दी ही नरक पहुँचाते हैं।

४. **मिस्टर तम्बाकू का लैक्चरः-** मिस्टर तम्बाकू बोल उठा घर २ में है प्रचार मेरा, हो शादी या कहीं मरना हो सब जगह पे सत्कार मेरा। खाँसी व दमा मिर्गी वाले यह भक्त मेरे ही सारे हैं, तपेदिक वाले लाखों नर नारी देखों मैंने मारे हैं।

५. **श्रीमती शराब के विचारः-** जो करले सेवन मेरा, चिन्ता से उसे छुड़ाती हूँ, धनहीन बना, बलहीन बना मूर्ख मैं उन्हें बनाती हूँ। माँ बहन और बेटी का उनको ध्यान कोई न रहता है, जो थोड़ी सी पी लेता है, डंडे जूते सब सहता है।

पियो शराब, हो जाय खानदान खराब।
खाओ अफीम हो जाओ यतीम।
पियोगे भंग, हो जाओगे नंग।

पातंजल योग दर्शन

प्रथम पाद - १

गतांक से आगे-४

पूर्व में कहे गये पांच प्रकार की व त्तियों में से प्रमाणव त्ति के भेद बतलाते हुए सूत्रकार आगे कहते हैं कि–

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।।७।।

(प्रत्यक्षानुमानागमाः) प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम– ये तीन प्रकार के (प्रमाणानि) प्रमाण व त्ति हैं।

व्याख्या- पूर्वोक्त पांच व त्तियों में से प्रथम प्रमाण व त्ति है। प्रमाण व त्ति तीन प्रकार की होती हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। इनमें से प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण व त्ति का वर्णन करते हैं।

१. प्रत्यक्ष प्रमाणः-

जो नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा विषयाकार चित्त की व त्ति उत्पन्न होती है उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कही जाती है। इस विषय में व्यास भाष्य में कहा है कि–

इन्द्रिय प्रणालिकया चित्तस्य वाह्यवस्तु परागात्तद्विषया सामान्य विशेषात्मनो र्थस्य विशेषावधारणं प्रधान व त्तिः प्रत्यक्षप्रमाणम् ।।योग. व्यासभाष्य।।

अर्थात् इन्द्रियरूपी नलिका के द्वारा चित्त का बाह्य वस्तु से सम्पर्क (सम्बन्ध) होने के कारण तद्विषयिनी सामान्य और विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश का प्रधानतया अवधारणा करने वाली चित्तव त्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। तात्पर्य यह है कि चित्त का किसी भी वस्तु में राग होने से इस नेत्र प्रणाली के द्वारा विषय–देश में पहुंच कर उस वस्तु विशेष–घटादि के आकार वाला हो जाता है चित्त के इस प्रकार घटपटादिक आकार विशिष्ट परिणाम को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

यथार्थज्ञान (प्रमा) के कारण (साधन) को प्रमाण कहते हैं। अतः समस्त जगत् के पदार्थों को जानने का जो साधन है, उसे प्रमाण कहते हैं। मैं नेत्रों से देखता हूँ, मैं कानों से सुनता हूँ, मैं नासिका से सूँघता हूँ आदि रूपों से हमें तत्तत् विषयक ज्ञान होता है। यदि यह ज्ञान यथार्थ हो तो उसे प्रमा कहा जाता है और यदि अयथार्थ हो तो अप्रमा कहा जाता है। योग–सांख्य के मतानुसार प्रत्यक्ष के विषय में पांच पदार्थ मानते हैं। यथा– प्रमाण, प्रमेय, प्रमा, प्रमाता और साक्षी। इनका क्रम पूर्वक वर्णन इस प्रकार है–

(क) प्रमाण- 'अहं घटं जानामि' मैं घट को जानता हूँ, इस प्रकार ज्ञान वाला या आकार वाला जो विषय सहित चित्तव त्ति विषयक पुरुषनिष्ठ ज्ञान है उसे प्रमाण कहते हैं। अर्थात् जिस चित्तव त्ति से वस्तु का यर्थार्थ बोध होता है, उसे ही प्रमाण कहते हैं।

(ख) प्रमेय- उक्त घटादि आकार वाली चित्तव त्ति का विषय घटादि है, अतः घटादिक पदार्थ प्रमेय है। अर्थात् व त्ति में प्रतिबिम्बित विषय ही प्रमेय कहा जाता है।

(ग) प्रमा- पौरुषेय बोध, अनधिगत, अबधित, अर्थविषयक ज्ञान को प्रमा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसको पूर्व में किसी प्रमाण द्वारा जानकारी प्राप्त न हुई हो तथा जो किसी के द्वारा बाधित न हो, ऐसे अर्थ को विषय करने वाला पुरुषनिष्ठ ज्ञान को प्रमा कहा जाता है।

(घ) प्रमाता- बुद्धि अर्थात् चित्त में प्रतिबिम्बित चेतन जो इस प्रमा का आश्रय है उसे प्रमाता कहा जाता है।

(ड.) साक्षी- बुद्धिव त्ति यानी चित्तव त्ति से उपहित जो शुद्धचेतन है, वही साक्षी है। अन्य कोई साक्षी नहीं है। इसलिये श्रुति में कहा भी है कि—

'साक्षी चेताकेवलो निर्गुणश्च'।। श्वेता. ६।११।।

अर्थात् वह सबका साक्षी है, चेतन स्वरूप है जो सबको चेतनता प्रदान करने वाला सर्वथा विशुद्ध स्वरूप और गुणातीत निर्गुण है।

२. अनुमान प्रमाणः-

प्रत्यक्ष प्रमाण से भी यदि किसी पदार्थ को न जाना जाये तो अनुमान प्रमाण के द्वारा जानना चाहिये। अनुमान प्रमाण के द्वारा भी पदार्थों का ज्ञान होता है। जब वस्तु प्रत्यक्ष न हो, परन्तु उसकी विद्यमानता के लिंग (चिन्ह) हो, तो उन चिन्हों को देखकर जो वस्तुविषयक यथार्थ ज्ञान होता है उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति पर्वत पर धूम को देखकर विचारता है या अनुमान करता है कि—

'पर्वतो वह्निमान्, धूमवत्त्वात्, यो यो धूमवान्
स स वह्निमान यथा महानसम्'।।

पर्वत वह्निवाला है, धूमवाला होने से, क्योंकि जो—जो धूमवाला होता है वह वह्निवाला ही होता है जैसे रसोईघर में। क्योंकि—

'यत्र वर्ह्निनास्ति तत्र धूमो पिना स्ति यथा ह्रदं।

जहाँ वह्नि नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता जैसे तालाब या सरोवर

आदि में।

इस प्रकार से धूम से अग्नि का सम्बन्ध सामान्य रूप से निश्चित करके पर्वत में धूम को देखकर अग्नि होने का जो यथार्थ ज्ञान हो, उसको अनुमान प्रमाण कहते हैं। अनुमान प्रमाण भी तीन भेद युक्त है, यथा– पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोद ष्ट– इस भेद से। इनका वर्णन आगे किया जाता है।

(क) पूर्ववत्- जहाँ पर कारण को देखकर कार्य का अनुमान होता है वहाँ पूर्ववत् अनुमान प्रमाण का प्रमाण समझना चाहिये। जैसे काली घटा को देखकर होने वाली वर्षा का अनुमान, गाभिन गाय को देखकर होने वाला बछड़े का अनुमान होता है। इसे पूर्ववत् अनुमान प्रमाण कहते हैं।

(ख) शेषवत्- जहाँ कार्य को देखकर कारण का अनुमान होता है। वह शेषवत् अनुमान प्रमाण कहा जाता है। जैसे बछड़े को देखकर उसकी माँ–गाय का अनुमान तथा नदी में मटीले पानी को देखकर पहले हुई वर्षा का अनुमान होता है।

(ग) सामान्यतोद ष्ट- जो सामान्य रूप से देखा गया हो विशेष रूप से नहीं देखा गया हो वह सामान्यतोद ष्ट अनुमान प्रमाण है। जैसे मिट्टी से बने हुए घड़े को देखकर घड़ा बनाने वाला कुम्हार का अनुमान तथा इस परिद श्यमान जगत् को देखकर इसका स जन करने वाला सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अनुमान होता है। इसी का नाम सामान्यतोद ष्ट अनुमान प्रमाण है।

उक्त अनुमान प्रमाण से जो चित्त में परिणाम होता है, उसी को अनुमान व त्ति नाम से भी कहते हैं। इसीलिये व्यासभाश्य में कहा है कि–

'अनुमेयस्थ तुल्य जातीयेश्वनुव त्तो..................।।

इन वाक्यों के द्वारा कहा है कि– जिस वस्तु का अनुमान किया जाता है उसे अनुमेय कहते हैं। उस अनुमेय को एक जाति वाले पदार्थों में युक्त करने वाला भिन्न जाति वाले पदार्थो से प थक् करने वाला जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध ा का जिस व त्ति के द्वारा विचार किया जाता हो उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं। जैसे देशान्तर अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान में चले जाने के कारण चन्द्रमा एवं समस्त तारामण्डल चल हैं। चैत्र नामक पुरुष के समान विन्ध्य नामक पर्वत की अन्य देशों में अप्राप्ति है। इससे विन्ध्यपर्वत गमन क्रिया से रहित होना अनुमान प्रमाण से जाना जाता है।

३. आगम प्रमाण:-

जिन तत्वों को अनुमान प्रमाण से भी नहीं जाना जाता हो उनको आगम

प्रमाण से जानना चाहिये। वेद, शास्त्र तथा आप्त पुरुष जो कि भ्रम, विप्रलिप्सा आदि दोषों से रहित यथार्थ सत्यवक्ता हो उनके वचनों को आगम प्रमाण के नाम से कहते हैं। तात्पर्य यह है कि वेद तथा शास्त्रों के अध्ययन से या उनके श्रवण से अथवा आप्त पुरुष अर्थात् सत्यद्रष्टा पुरुष के उपदेश से श्रोता के चित्त में जो परिणाम होता है उसको आगम प्रमाण या शब्द प्रमाण के नाम से कहते हैं। व्यास भाष्य में कहा है- कि–

'आप्तेन द ष्टो नुमितोवार्थः परत्र स्वबोध संक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते। शब्दात्तदर्थ विषया व त्तिः श्रोतुरागमः। यस्याश्रद्धेयार्थो वक्ता न द ष्टानुमितार्थः स आगमः प्लवते। मूलवक्तरि तु द ष्टानुमितार्थे निर्विप्लवः स्यात्' ।। योग व्यासभाष्य।।

आप्त पुरुष से द ष्ट या अनुमित जो अर्थ या विषय है, जब दूसरे व्यक्तियों को उसका बोध कराने के लिये आप्त पुरुष उसका उपदेश करते हैं तब उससे जो अर्थ विषयक व त्ति श्रोता में उत्पन्न होती है वह श्रोता–पुरुष का आगम रूप आप्त प्रमाण होता है। जिस आगम का वक्ता अश्रद्धेय तथा वंचक पुरुष हो और जिसका अर्थ वक्ता के द्वारा द ष्ट या अनुमित न हुआ हो, वह आगम मिथ्या है, अर्थात् वह आगम प्रमाण नहीं होता। पर जो विषय मूल वक्ता के द्वारा या आप्त पुरुष के द्वारा द ष्ट तथा अनुमित होता है उस विषय का आगम प्रमाण विप्लव से रहित यथार्थ सत्य होता है।'

प्रमाणों की संख्या एक से लेकर दस तक मानी गयी है। उनके नाम इस प्रकार हैं– (१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान (३) आगम (शब्द), (४) उपमान्, (५) अर्थापत्ति (६) अनुपलब्धि, (७) ऐतिह्य, (८) सम्भव, (९) चेष्टा और (१०) परिशेष। ये दस प्रमाण हैं। इनमें से योग–सांख्य मत वालें– प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शब्द)– इन तीन प्रमाणों को मानते हैं। न्यायदर्शनकार– प्रत्यक्ष से लेकर अनुपलब्धि तक छः प्रमाण मानते हैं। पूर्वमीमांसा दर्शनकार भी वेदान्त में मान्य छः प्रमाणों को तथैव मानते हैं। शेष ऐतिह्य, सम्भव, चेष्टा और परिशेष– अन्य दार्शनिक लोग मानते हैं।

O

(क्रमशः) विज्ञानानन्द

परमेश्वर के ध्यान में साधक ज्यों-ज्यों डूबता जाता है त्यों-त्यों प्रभु के दर्शन के लिये उसकी आतुरता भी बढ़ती जाती है। यदि एक पल के लिये भी उसे उस परमेश्वर का साक्षात्कार (दर्शन) हो जाय तो वह उस स्थिति में अधिकाधिक समय तक डूबे रहने की इच्छा करता है।

महापुरुषों में स्वाभाविक विलक्षण गुणगण

–श्री स्वामी विष्णु चैतन्य जी महाराज

प्रारब्धमुक्तमगुणा न परित्यजन्ति-

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्तिमध्याः।
विघ्नैः सहस्रगुणितैरपि हन्यमानाः प्रारब्धमुक्तमगुणा न परित्यजन्ति।।

नीचजन विघ्नों के भय से किसी कार्य को आरम्भ ही नहीं करते हैं। मध्यकोटि के पुरुष कार्य को आरम्भ तो कर देते हैं परन्तु विघ्न आने पर उसे छोड़ देते हैं। परन्तु उत्तम पुरुष बारम्बार विघ्नों के द्वारा प्रताड़ित होने पर भी अपने प्रारम्भ किये हुए कार्य को छोड़ते नहीं।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः।
यशसि चाभिरूचिर्व्यसनं श्रुतौप्रक तिसिद्धमिदंहि महताम्।। नीतिशतक् ६३।।

विपत्ति आने पर धैर्य, अधिक उन्नति होने पर क्षमा, सभा में उचित भाषण की योग्यता, संग्राम में पराक्रम, यश में अभिलाषा, वेद आदि शास्त्रों के अध्ययन में तत्परता– ये सभी विलक्षण गुण महापुरुषों में स्वाभाविक ही होते हैं।

परोपकारपरायणता-

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपर्णास्त्रीभुवनमुपकारश्रेणिभिःप्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीक त्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

मन, वाणी और शरीर में पुण्यकर्मरूपी अम त से परिपूर्ण अनेक प्रकार के उपकार से तीनों लोकों को प्रसन्न करने वाले और दूसरों के परमाणु मात्र सूक्ष्म गुणों को पर्वताकार विस्त त मानकर अपने मन में सर्वदा प्रफुल्लित होने वाले सत्पुरुष इस संसार में कितने हैं। अर्थात् इस विश्व में इस प्रकार के सन्तों का दर्शन सौभाग्य से होता है।

परोपकाराय सतां विभूतयः– महापुरुषों की जो विभूतियाँ हैं– ये सभी विभूतिशब्द से कथित हैं। महात्माओं की वे विभूतियाँ परोपकार के लिये ही होती है। ○

मत मतान्तरों की बातों को लेकर वाद-विवाद करना शब्दाडम्बर और अहंता-ममतादि तो परदे के बाहर ही बाते हैं। परदे के भीतर तो नीरवता और शान्ति ही व्याप्त है।

(१) महर्षि याज्ञवल्क्य

महर्षि याज्ञवल्क्य यजुर्वेद के शाखा प्रवर्तक है। उनका नामोल्लेख शतपथ ब्राह्मण में यज्ञों के प्रश्नों पर एक महान् विद्वान् के रूप में मिलता है। ब हदारण्यक उपनिषद् में उन्हें दर्शन का अधिकारी विद्वान् माना गया है। वे एक महान् आध्यात्मवेत्ता, योगी, ज्ञानी, धर्माचार्य, धुरन्धर विद्वान और वाग्मी थे। भुवन भास्कर भगवान् सूर्य की प्रत्यक्ष क पा उन्हें प्राप्त थी। पुराणों में उन्हें ब्रह्मा जी के अवतार बताया गया है और श्री मद्‌भागवत् (१२।६।६४) में याज्ञवल्क्य को देवरात के पुत्र बताया है।

महर्षि याज्ञवल्क्य के द्वारा वैदिक मन्त्रों को प्राप्त करने की आश्चर्य पूर्ण कथा पुराणों में पाई जाती है। याज्ञवल्क्य जी वेदाचार्य महर्षि वैशम्पायन के शिष्य थे। उन्हीं से उन्हें मन्त्र शक्ति तथा वेदज्ञान प्राप्त हुआ था। वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से अत्यन्त स्नेह रखते थे और उनकी भी गुरुजी पर अनन्य श्रद्धा एवं सेवा–निष्ठा थी। किन्तु दैवयोग से एक बार गुरुजी से इनका कुछ विवाद हो गया, जिससे गुरुजी नितान्त रुष्ट हो गये और कहने लगे कि– मैंने जो तुम्हें यजुर्वेद के जितने मन्त्रों का उपदेश किया है उन सबको तुम त्याग दो और मुझे वापस कर दो। इस प्रकार गुरु की आज्ञा हुई तो अब क्या किया जाय, गुरु की आज्ञा तो माननी ही थी। निराश होकर याज्ञवल्क्य ने सारी वेद मन्त्र विद्या मूर्त रूप में उगल दी। अर्थात् परित्याग कर दिया, जिन्हें वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिर (तीतर पक्षी) बनकर श्रद्धा पूर्वक उनको ग्रहण कर लिया और वेद मन्त्र उन्हें प्राप्त हो गये। यजुर्वेद की वही शाखा जो तितर बनकर ग्रहण की गयी थी वही 'तैत्तिरीय शाखा' के नाम से प्रसिद्ध हुई

याज्ञवल्क्य अब वेदज्ञान से शून्य हो गये तो गुरु जी भी रुष्ट हो गये थे। अब क्या किया जाय, तब उन्होंने किसी मनुष्य को गुरु बनाने की इच्छा छोड़कर सूर्यरूप देव यानी सूर्यनारायण की शरण ली और उनसे प्रार्थना की, कि हे भगवन् हे प्रभो! मुझे ऐसे यजुर्वेद की प्राप्ति हो, जो अब तक किसी को भी प्राप्त न हुआ हो– 'अहमयातयामयजुः काम उपससारमीति' (भागवत. १२।६।७३)

भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये और वाजी अश्वरूप ध ारण कर यजुर्वेद के उन मंत्रों को उपदेश किया, जो अभी तक किसी को प्राप्त नहीं हुए थे। जैसे कहा है–

'एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः।
यजूंष्ययातयामानि मुनये दात् प्रसादितः।। भागवत्. १२।६।७३।।

वाजिरूप सूर्य से प्राप्त होने के कारण शुक्ल यजुर्वेद की एक शाखा 'वाजसनेय' और मध्यदिन के समय प्राप्त होने के कारण 'माध्यन्दिन' शाखा के नाम से प्रसिद्ध है। इस 'शुक्लयजुर्वेद संहिता' के मुख्य मन्त्र द्रष्टा ऋषि याज्ञवल्क्य जी ही थे। इसलिये आर्षवाङ्मय में यजुर्वेद दो माने गये हैं एक शुक्ल यजुर्वेद और दूसरा है क ष्ण यजुर्वेद– इस भेद से। सूर्य के द्वारा याज्ञवल्क्य को प्राप्त यजुर्वेद ही शुक्ल यजुर्वेद के नाम से कहते हैं और दूसरे को क ष्ण यजुर्वेद के नाम से कहते हैं।

शुक्ल यजुर्वेद संहिता में चालीस अध्याय हैं। आज प्रायः अधिकांश लोग इस वेद–शाखा से ही सम्बद्ध है और सभी पूजा, अनुष्ठानों, संस्कारों आदि में इसी संहिता के मन्त्र ही विनियुक्त होते हैं। 'रुद्राष्टाध्यायी' नाम से जिन मंत्रों द्वारा भगवान् रुद्र (सदाशिव) की आराधना होती है, वे इसी संहिता में विद्यमान है। इस प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य जी का मानव समाज पर महान् उपकार है।

इतना ही नहीं इस संहिता का जो ब्राह्मण भाग 'शतपथ ब्राह्मण' के नाम से प्रसिद्ध है और जो 'ब हदारण्यक उपनिषद' है वह भी महर्षि याज्ञवल्क्य के द्वारा ही हमें प्राप्त हुए हैं। इसी ब हदारण्यक में कथित जनकराज की सभा में जो बहुदक्षिणा नाम के यज्ञ में भाग लेने के लिये आये हुए ब्रह्मतत्व सम्बन्धी शास्त्रार्थ में अनेकों श्रोत्रिय ब्राह्मण आचार्यों को पराजित करके विजय प्राप्त करने वाले सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी तथा ब्रह्मनिष्ठ पुरुष वह याज्ञवल्क्य ही थे। आखिर ब्रह्मवादिनी गार्गी भी शास्त्रार्थ में हार गई और याज्ञवल्क्य की विजय हुई।

इस प्रकार से समय बीतते गये और साथ ही शारीरिक शिथिलता भी आती गयी। इसलिये याज्ञवल्क्य जी ने जब देखा कि जवानी जाती दिखाई दे रही है और बुढ़ापा आता दिखाई पड़ रहा है। चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयी हैं अतः भारतीय संस्क ति के अनुसार अब संन्यास लेने का समय आता देखकर मन में विचार करने लगे कि अब तो मुझे संन्यास ले लेना चाहिये। परन्तु पत्नियों से अनुमति लेना भी आवश्यक है। ऐसा विचार कर वैदिक सनातन धर्म के मर्म को जानने वाले याज्ञवल्क्य जी ने एक दिन दोनों पत्नियों (मैत्रेयी और कात्यायनी) को पास बुला कर कहा कि– 'हे मैत्रेयी और कात्यायनी! अब मैं इस ग हस्थाश्रम को परित्याग करके चतुर्थ आश्रम संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाला हूँ। अतः तुम दोनों से मैं अनुमति लेना चाहता हूँ और अपनी सम्पत्ति को तुम दोनों को उचित बंटवारा कर देना चाहता हूँ। इसीलिये मैंने तुम दोनों को पास बुलाया है।

यह सुनकर कात्यायनी तो स्त्री सुलभ स्वभाव के कारण चुप रही, परन्तु मैत्रेयी विदुषी थी इसलिये वह बोल पड़ी– 'यदि ऐसी बात है तो हे पतिदेव! मुझे एक बात बताईये कि यदि यह धन धान्य से भरपूर यह सारी प थ्वी मेरी हो जाये, तो क्या इससे मैं अमर हो जाऊँगी?' याज्ञवल्क्य ने कहा– 'नहीं मैत्रेयी नहीं, इन भौतिक भोग–सामग्रियों से तो तुम्हारा जीवन एक धनिकों जैसा बीतेगा, परन्तु धन से अमरत्व या अम त्तत्व की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है।' यह सुनकर मैत्रेयी ने कहा–

'येनाहं नाम तास्यां किमहं तेनकुर्यां
यदेव भगवान्वेद तदेवमेब्रूहीति ।।' ब ह. उप. २१।४।३।।

'जिस धन–सम्पत्ति से मैं अमर नहीं बन सकती अम तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, उसे लेकर मैं क्या करूँगी? इसलिये भगवन्! जो कुछ आप अमरत्व या अम ततत्व की प्राप्ति के साधन जानते हैं उसी का मुझे उपदेश करें।

तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा' मैत्रेयी! पहले भी तू मेरी अत्यन्त प्रिय थी, इस समय में भी मेरी प्रसन्नता के लिये अति प्रिय वचन ही बोल रही हो। मैं नितान्त सन्तोष भाव से तुझसे उस अमरत्व या अम तत्व के साधन की व्याख्या करके समझाऊँगा। तू मेरे द्वारा बतलाये विषय को अच्छी तरह से मनन करके समझ लेना।

'आत्मा में सर्वाधिक प्रेम-

हे मैत्रेयी! याज्ञवल्क्य ने ऐसा कहा– 'इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पति के प्रयोजन के लिये पति प्यारा नहीं होता, किन्तु अपने ही प्रयोजन के लिये पति प्यारा होता है। अर्थात् आत्मा[1] के लिये ही पति प्यारा होता है। स्त्री के प्रयोजन के लिये स्त्री प्यारी नहीं होती, किन्तु अपने ही प्रयोजन के लिये स्त्री प्यारी होती है। पुत्रों के सुख के लिये पुत्र प्यारे नहीं होते, किन्तु अपने ही सुख रूप प्रयोजन के लिये पुत्र प्यारे होते हैं। धन भी धन के प्रयोजन के लिये धन प्यारा नहीं होता प्रत्युत अपने ही प्रयोजन के लिये धन प्यारा होता है। पशुओं के प्रयोजन से पशु प्यारे नहीं होते किन्तु अपने ही प्रयोजन के लिये पशु प्यारे होते हैं। देवों के प्रयोजन के लिये देव प्रिय नहीं होते, किन्तु अपने ही प्रयोजन के लिये देव प्यारे होते हैं।

शरीर आत्मा...।।ब ह. उप. ४/३/३५।। यहाँ पर इस शरीर को ही आत्मा नाम से कहा है। आत्मा वै तनुः।। शतपथ ब्राह्मण।। इस मन्त्र में भी भौतिक स्थूल शरीर को ही आत्मा नाम से कहा है, चैतन्य स्वरुप आत्मा इससे भिन्न है।

विशेष कहा तक कहे बात इतनी ही है कि सबके प्रयोजन के लिये सर्वप्रिय नहीं होते किन्तु आत्मा (भौतिक आत्मा) के लिये सर्वप्रिय होते हैं। परन्तु इसके पीछे एक चैतन्य स्वरूप आत्मा भी है जो सत्य स्वरूप असली आत्मा है। उसके विद्यमान होने से ही वे समस्त कार्य–व्यापार आदि होते हैं उसके बिना नही। इसलिये महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने सत्य आत्मा के विषय में आगे बताते हैं–

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य
मैत्रय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या
विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।।ब ह. उप. २।४।५।।

अरे मैत्रेयी! यह चैतन्य स्वरूप आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान समाधि के द्वारा साक्षात्कार करने योग्य है। हे मैत्रेयी! इस आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इन सबका ज्ञान हो जाता है और यह आत्मज्ञान ही एकमात्र सार है। आत्मज्ञान से ही कैवल्य–मोक्ष की प्राप्ति होती है बिना आत्मज्ञान के नहीं।

महर्षि याज्ञवल्क्य अब मैत्रेयी को अन्तिम उपदेश देते हुए कहते हैं कि 'हे मैत्रेयी! जिस अविद्यावस्था में द्वैत प्रतीत होता है वहाँ पर ही अन्य अन्य को देखता है, अन्य अन्य को सूंघता है, अन्य अन्य का रस (आनन्द) लेता है, अन्य अन्य को कहता है, सुनता है, अन्य अन्य का मनन (चिन्तन) करता है, अन्य अन्य को छूता है और अन्य अन्य को विशेष रूप से जानता है। इसके विपरीत जहाँ पर इस आत्मदर्शी विद्वान की द ष्टि में सब आत्मा ही हो गया, वहाँ पर किससे किसको देखे, किससे किसको कहे, किससे किसको सुने, किससे किसको मनन करे, किससे किसको छूवें और किससे किसको जाने? पुरुष (आत्मा या ब्रह्म) जिससे इन सबको जानता है उसे भला किसके द्वारा जाने?

इस रहस्य को 'नेति–नेति' पद के द्वारा बताया गया है। अर्थात् आत्मा अग्राह्य है उसका ग्रहण नहीं किया जाता। यह अशीर्ष है, उसका परिवर्तन या विनाश नहीं होता। वह असंग है, अतः कहीं पर भी संसक्त नहीं होता। वह असंग होने से अबद्ध भी है। वह पीड़ित और क्षीण भी नहीं होता। हे मैत्रेयी! 'विज्ञातारमरे केने विजानीयात्'। सबको जानने वाले विज्ञाता को किससे जाने? अतः वह साध ाना के द्वारा उत्पन्न ज्ञानगम्य है।

इस प्रकार से हमने तुझे आत्मा सम्बन्धी ज्ञान का उपदेश दे दिया है। अरे मैत्रेयी! बस तू निश्चय जान कि, आत्मतत्व या अम ततत्व का रहस्य इतना ही है। ऐसा कहकर, महर्षि याज्ञवल्क्य जी वहाँ से विदा होकर अन्यत्र चले गये। उसके बाद विद्वत संन्यास धारण करके शेष जीवन काल उन्होंने संन्यस्त जीवन व्यतीत किया और अन्त में 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' (मुण्डक. ३।२।६।) ब्रह्म को जाननें वाला ब्रह्म ही हो जाता है। इस श्रुति वाक्य के अनुसार कैवल्य –मोक्ष को प्राप्त हो गये। इससे उनका जीवन धन्य बन गया। ○

–विज्ञानानन्द

(२) महर्षि वेदव्यास

व्यास शब्द का अर्थ 'व्यास्यति वेदान्' अर्थात् विशेष कर विस्तार करने वाला, विभाजन करने वाला, व्यवस्था करने वाला पराशरनन्दन वेदव्यास जिन्होंने वेद मंत्रों को क्रमबद्ध करके वर्तमान रूप दिया है। व्यास एक उपाधी भी है और वह उपाधि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों को प्रदान की गयी है। परन्तु विशेष कर वेदव्यास उपाधि वस्तुतः वेदों को व्यवस्थित रूप प्रदान करने वाला सत्यवती सुत उस वेदव्यास जी को दी गयी है। यही नाम महाभारत के कर्ता, वेदान्त दर्शन के कर्ता तथा तमाम पुराणों के कर्ता को भी दिया गया है।

महाभारतकार वेदव्यास पराशर और सत्यवती के पुत्र थे। वे सांवले रंग के थे तथा यमुना के बीच किसी द्वीप में जन्मे थे, इसलिये सांवले होने के कारण 'क ष्ण' और द्वीप में जन्म होने के कारण द्वैपायन अर्थात् क ष्ण द्वैपायन नाम पड़ा। क ष्ण द्वैपायन ने आध्यात्मिक साधना तप तथा वैराग्य का जीवन ही पसन्द किया। किन्तु माता ने इस पर आंपत्ति की, तो क ष्ण द्वैपायन ने कहा– माता जब तुम मुझ पुत्र का स्मरण करोगी तभी मैं जहाँ पर भी रहूँ आपके पास पहुंच जाऊँगा। इस प्रकार वचन देने पर माता सत्यवती से आज्ञा लेकर जंगल में तपस्या के लिये चले गये।

वे स्वयं विष्णु के अवतार थे उन्हें तपस्या करने की क्या आवश्यकता थी? फिर भी लोक–कल्याण के निमित्त उन्होंने जगत् के सामने एक महत्वपूर्ण आदर्श प्रस्तुत किया।

आने वाले कलियुग के लोग आलसी, अल्पायु, मन्दमति तथा पाप कर्मों में लिप्त देखकर उन्होंने वेद का विभाजन किया– ऋक्, यजु, साम और अथर्व– इन चार संहिताओं के रूप में। स्त्री, शूद्र तथ विद्या विहीन मूर्ख व्यक्ति भी वेदार्थ ज्ञान से वंचितं न रहें इसलिये उन्होंने महाभारत तथा तमाम पुराणों की रचना की है। इनमें वेदार्थ का उपब हंन किया गया है। और उपाख्यानों के द्वारा वेदार्थ को समझाने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार ज्ञान, कर्म तथा उपासना आदि का पर्याप्त विस्तार पूर्वक समझाने के लिये जितना कुछ करना था वह सब उन्होंने किया।

माता (सत्यवती) की आज्ञा का क्या महत्व है? यह समझने के लिये अपनी माता की आज्ञा से विचित्रवीर्य की दोनों पत्नियों से केवल द ष्टिमात्र से– ध तराष्ट्र, पाण्डु तथ विदुर जैसे वीर, ज्ञानवान और नीतिपरायण पुरुषों को जन्म दिया। अनेकों को उपदेश दिया। उनकी वाणी से, संकल्प से और दर्शन मात्र से अनेकों को परमार्थ पथ प्राप्त हुए हैं।

उनके कई गुरुओं के नाम आते हैं। सर्व प्रथम उनके पिता पराशर ने उन्हें शिक्षा दी है। उसके बाद सनतकुमार आदि से कई बार सदुपदेश ग्रहण किये थे। सब कुछ कर लेने के बाद अब उनके मन में यह बात खटकने लगी कि अभी भी मेरा कुछ कर्तव्य बाकी है। एक दिन सरस्वती नदी के तट पर बैठे सोच रहे थे कि–इतने में भक्ति के आचार्य देवर्षि नारद वीणा पर भगवन्नाम का गायन करते हुए क ष्णद्वैपायन मुनि के पास जा पहुंचे । मुनि ने उनका स्वागत सत्कार किया। वे एक आसन पर प्रसन्नता पूर्वक विराजमान हुए।

देवर्षि नारद जी ने कहा– महर्षि! आपने तो सब कुछ कर ही लिया है, फिर भी आप अत प्त से जान पड़ते हो– आश्चर्य की बात है। आपकी ही क पा से संजय को दिव्य द ष्टि मिल गयी थी, जिस हेतु वह ध तराष्ट्र के पास बैठे–बैठे ही महाभारत के समस्त रहस्यों को देख लेते थे, सुन लेते थे। यहाँ तक कि उन्होंने भगवान् श्री क ष्ण की उस दिव्य वाणी 'भगवत्गीता' का भी श्रवण किया था। केवल इतना ही नहीं भगवान् के उस दिव्य रूप (विराट रूप) को भी दर्शन प्राप्त किया था जो बड़े –बड़े देवताओं को भी दुर्लभ है। गान्धारी और ध तराष्ट्र उनके म त पुत्र–पौत्रों को अन्य कुटुम्बियों सहित दर्शन कराकर आपने उनका शोक–सन्ताप को दूर कर दिया था। संसार में वेदों का विस्तार करके ज्ञान, कर्म और उपासना की त्रिवेणी बहा दी है। ऐसे तो महाभारत में सभी कुछ है जो महाभारत में नहीं है अन्यत्र कहीं भी नहीं । आपके शिष्य जिन्हें आपके उपदेशों से कल्याण को प्राप्त हुआ है उनकी भी कोई गिनती नहीं है, फिर भी आपमें इस असन्तोष का कारण क्या हो सकता है?

क ष्ण द्वैपायन ने कहा– 'देवर्षे! आपसे क्या छिपा है, मुझे तो लगता है कि आप ही इसका कारण बता सकेंगे। अतः अब आप ही इसका कारण बताईये जिससे मुझे आन्तरिक सन्तोष प्राप्त हो। कारण की सन्तों की यात्रा दूसरों के कल्याण के लिये ही हुआ करती है। वेदव्यास जी की बात सुनकर देवर्षि नारद हंस पड़े। उन्होंने बड़े शान्त भाव से कहा– 'आप तो साक्षात् विष्णु के अवतार स्वरूप हैं, भला आपसे क्या छिपा हुआ है। आपके अन्दर शोक और मोह तो आ ही कैसे सकते हैं? आप तो इन सबसे परे हैं। परन्तु आपने मर्यादा की रक्षा के लिये और मुझे गौरव देने के लिये जब मुझसे पूछा ही है तो सुनिये मैं बताता हूँ–

जगत् में आकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कर लेने पर भी मनुष्य का कुछ कर्तव्य अवशेष रह जाता है– यह है जगत् का कल्याण तथा उपकार रूप कर्तव्य। आपने चतुर्वर्ग का पूर्णतः प्रतिपादन किया है इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु पूर्व के तीन पुरुषार्थों में तो संसार के लोग लगे हुए ही हैं

जिससे वे स्वभावतः ही आसक्त हैं। फिर यदि उन्हें उस ओर ही प्रेरित किया जाय तो बेचारे संसार में ही भटकते रह जायेंगे। न जाने कितनी जीव योनियों में भटकते हुए पुण्य के फलस्वरूप मनुष्य जीवन मिला है, यदि अब भी संसार में भी भटकते रहे तो उन्हें परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो सकती है? इन तीन पुरुषार्थों (ध र्म, अर्थ और काम) की तो कोई बात ही नहीं, नैष्कर्मज्ञान, मुक्ति या अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाय, तो भी उसकी तब तक शोभा नहीं जब तक भगवान् श्री क ष्ण की अहैतुकी भक्ति प्राप्त न हो।

समस्त ज्ञान, सम्पूर्ण उपासना और समग्र कर्म का यही रहस्य है और महान् फल है कि भगवान् श्री क ष्ण चन्द्र के गुणानुवाद किये जायें और उसका श्रवण भी किये जायें। आपने यद्यपि भगवान् का ही वर्णन किया है तथापि धर्म, कर्म आदि की बहुलता के कारण ये सब छिप से गये हैं। अतः अब आप विशुद्ध भगवद् गुणवर्णन प्रधान 'भागवत् पुराण' का प्रतिपादन करें सम्पादन करें यही आपका अवशेष क त्य है। आपतो सर्वज्ञ है, आप से क्या कहूँ? मैं पूर्व जन्म में एक दासी का पुत्र था। भगवान् का गुणानुवर्णन सुनते–सुनते सत्संग के प्रभाव से मेरी भागवत धर्म में रूचि हो गयी।

भगवान् ने मुझ पर क पा करके मुझे एक बार भव्य दर्शन दिये। फिर उन्हीं की इच्छा से दूसरे जन्म में मैं ब्रह्मा का मानस पुत्र हुआ और अब मैं उनकी लीला, नाम तथा गुणों का इस वीणा पर गायन करता हुआ सर्वत्र विचरण किया करता हूँ। मुझ पर उस भगवान् की इतनी अपार क पा है कि जब मैं उनका स्मरण करता हूँ तब वे आकर प्रकट हो जाते हैं। अतः आप भी उनका गुणगान कीजिये अर्थात् 'भागवत् पुराण' की रचना करें आपको भी परम शान्ति मिलेगी। उनके दिव्य चरित्र का वर्णन कीजिये। इससे आपका तो क्या, आपके बहाने त्रिलोकी को भी शान्ति मिलेगी। यही एक कारण है कि आपको अशान्ति है।

इतना कहकर देवर्षि नारद अपनी वीणा पर भगवन्नामों का गायन करते हुए वहां से चले गये।

देवर्षि नारद जी की इच्छानुसार महर्षि वेदव्यास जी ने परमहंस संहिता 'श्री मद्भागवत् पुराण' की सुन्दर रचना की जिसमें भगवद् भक्ति कूट–कूटकर भरी हुई है। यही मद्भागवत सात्वती श्रुति अर्थात् वैष्णवों का वेद के समान है। इसे उन्होंने अपने पुत्र शुकदेव जी को श्रवण कराया। अब उनके हृदय में क तक त्यता अनुभव किया। फिर तो वे निरन्तर भगवतरसाम त सिन्धु में ही सरावर रहते रहे।

शास्त्रों के कथनानुसार जैसे अश्वत्थामा, बलि आदि अष्टम चिरंजीवियों

में से महर्षि कृष्ण द्वैपायन–वेदव्यास भी एक है। चिरंजीवियों में परिगणना होने के कारण आज भी वह सिद्धकोटि में विद्यमान है जो अधिकारिक पुरुषों को यदा–कदा दर्शन दिया करते हैं। आद्य शंकराचार्य को उत्तरकाशी में एक बार उनके दर्शन हुए थे जो 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' पर शास्त्रार्थ किये थे। अतः महर्षि वेदव्यास का मानव समाज पर एक महान् उपकार है। उनकी जीवनी तो उनके द्वारा रचित समस्त पुराण तथा महाभारत एवं ब्रह्मसूत्र ही है। उनका अध्ययन और तदनुसार अपने जीवन को भगवन्नमय बनाना ही वास्तव में कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के जीवन का अध्ययन है। ○

–विज्ञानानन्द

(३) आद्य शंकराचार्य

हिन्दूधर्म का प्रथम प्रभात किस पुण्य–दिवस में उदित हुआ है यह कह पाना तो सम्भव नहीं है। परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि वर्तमान काल में जो धर्म का स्वरूप है इसका निर्माण श्रुति एवं स्मृतियों के आधार पर आचार्य शंकर ने किया है। वे अपूर्व प्रतिभा के धनी थे और उनकी साधना भी अलौकिक थी। उन्होंने भारतवर्ष को आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य तथा एकता के सूत्र में बांधा। भारतवर्ष के इतिहास में वैदिक सनातन धर्म के आदर्शों को पुनः प्रतिष्ठापित करने में आचार्य शंकर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ३२ वर्ष के संक्षिप्त जीवन काल में उन्होंने भारतीय जीवन में युगान्तर उपस्थित कर दिया था।

आचार्य शंकर का जिस समय प्रादुभार्व हुआ था उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष में धार्मिक अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। वैदिक सिद्धान्तों को हेय तथा अनुपादेय समझा जाने लगा था। वाममार्गी तथा सौत्रान्तिक वैभाषिक, योगाचार, माध्यमिक बौद्ध, जैन एवं तांत्रिक आदि मत के सिद्धान्तों का सफलतापूर्वक सर्वत्र प्रचार–प्रसार हो रहा था। वैदिक धर्म मानों लुप्त प्रायः होता जा रहा था। ठीक उसी समय ७८८ ई० (सम्वत् ८४५) में केरल प्रदेश की पूर्णानदी के तटवर्ती कालड़ी (कालटी) नामक गांव में धर्मनिष्ठ नम्बूदरी ब्राह्मण कुलोत्पन्न शिवगुरु के घर विशिष्टा (सुभद्रा) के गर्भ में वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन उन्होंने जन्म ग्रहण किया।

पुत्र के जन्म से पूर्व इनके माता–पिता बृद्धावस्था आने तक सन्तानहीन ही थे। इसलिये शिवगुरु और विशिष्टा दोनों ने सन्तान प्राप्ति के लिये चन्द्रमौलेश्वर महादेव की दीर्घकाल तक आराधना की। उनकी सच्ची उपासना से भूतभावन आशुतोष भगवान शंकर प्रसन्न हुए। एक दिन रात को स्वप्न में भक्त शिवगुरु के

समक्ष प्रकट होकर बोले– मैं तुम्हारी उपासना से अति प्रसन्न हूँ, बोलो तुम क्या चाहते हो? शिवगुरु का पुत्र के लिये लालायित ह्रदय बोल उठा– संसार की अन्य कोई वस्तु मुझे नहीं चाहिये, मुझे तो केवल पुत्र चाहिये। शंकर ने पूछा– 'सर्वगुण सम्पन्न सर्वज्ञ और अल्पायु एक पुत्र चाहते हो या अल्पज्ञ तथा दीर्घायु अनेक पुत्र चाहते हो? शिवगुरु ने सर्वज्ञ एक पुत्र की ही कामना की। भगवान् शंकर 'तथास्तु' ऐसा कहकह अन्तर्द्धान हो गये। फलस्वरूप न केवल एक सर्वगुण. सम्पन्न सर्वज्ञ पुत्र ही प्राप्त किया प्रत्युत साक्षात् भगवान् शंकर को ही उन्होंने पुत्र के रूप में प्राप्त किया। शंकर की पूजा–उपासना से प्राप्त होने के कारण पुत्र का नाम भी शंकर ही रखा।

बालक शंकर कोई साधारण बालक तो था नहीं साक्षात् शंकर ही तो पधारे हैं, इसका प्रमाण बाल्यावस्था से ही मिलने लग गया था।

एक वर्ष की अवस्था में मात भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लिया। दो वर्ष की अवस्था में माता से सुने हुए महाभारत, रामायण तथा पुराण आदि की कथाओं को कण्ठ करने लगे। तीन वर्ष की अवस्था में उनका चूड़ाकर्म करके उनके पिता का स्वर्गवास हुआ। पांचवे वर्ष में उनकी माता ने यज्ञोपवीत संस्कार करा करके उन्हें गुरु के पास विद्याध्ययन के लिये भेज दिया। गुरुग ह में ढाई वर्ष तक रहकर समस्त वेद–वेदांगों का अध्ययन कर लिया। बालक शंकर की मेधाशक्ति को देखकर उनके गुरुजन भी अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर रह गये। सात वर्ष की अवस्था में ही समस्त विद्याओं को अध्ययन करके घर वापस लौट आये। इसलिये यह श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है कि–

'अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे क तवान् भाष्य द्वात्रिंशेमुनिरभ्यगात्।।

आठवें वर्ष में चारों वेदों के ज्ञाता, बारह वर्ष में सर्वशास्त्रवित् अर्थात् सम्पूर्ण वैदिक शास्त्रों के ज्ञाता, सोलह वर्ष में प्रस्थानत्रयी का प्रसन्नगंम्भीर भाष्य की रचना करके बत्तीस वर्ष में अपना कार्य पूर्ण कर स्वधाम गमन किया। इस प्रकार का अद्‌भुत तथा आश्चर्यपूर्ण जीवन व तान्त विरल ही है। इसी विललक्षणता के कारण ही उन्हें शंकर का अवतार माना जाता है।

विद्याध्ययन के पश्चात् शंकर घर लौट आने पर माता ने शंकर को विवाह करा देने की इच्छा प्रकट की। परन्तु शंकर विवाह के लिये तैयार नहीं हुए। घर में रह करके ही शंकर अध्ययन तथा अध्यापन का कार्यक्रम चलाने लगे। शंकर की गहन–गंभीर विद्वत्ता से उनकी कीर्ति शीघ्र ही चारों और फैल गयी थी, इसलिये अनेक विद्यार्थियों के साथ–साथ कुछ वयोब द्ध पण्डित भी शास्त्र–अध्ययन के लिये उनके पास आने लगे। शंकर ने भी अपनी विद्वत्ता के बल से

उन सबको सन्तोष कर दिया करता था। शंकर ने अपनी सेवा से माता को भी सन्तोष कर दिया।

शंकर जानते थे कि वह अल्पायु होकर जन्में हैं और उसके अन्दर एक महानता का बीज सुप्त पड़ा हुआ है इसलिये शंकर अब संन्यास ग्रहण करना उचित समझा, क्योंकि विश्व को द्योतित करने वाले सूर्य झोंपड़ी में बन्दी बनकर कैसे रह सकते थे। माँ! मैं संन्यास लेना चाहता हूँ– शंकर ने माता से आज्ञा मांगी। माता विशिष्टा तो यह सुनते ही कांप उठी और साफ कह दिया कि– ना बेटा ना। शंकर माता के बड़े भक्त थे, इसलिये माता को दुःख देकर संन्यास लेना उचित नहीं समझा, पर संन्यास लेने की भावना उनके हृदय में बद्धमूल हो चुकी थी अतः उपाय सोचने लगे।

एक दिन माता के साथ शंकर भी नदी में स्नान करने के लिये गये और ज्यों ही वह पानी में स्नान करने उतरा एक ग्राह ने उनका एक पांव पकड़ लिया। शंकर ने कहा– माँ! मुझे मगर ने पकड़ लिया और गहरे पानी की ओर खींच रहा है। पुत्र को इस प्रकार प्राण–संकट में पड़ा देखकर माता के होश उड़ गये और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर हाहाकार मचाने लगी। शंकर ने कहा– माँ! यदि मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दो, तो मगर मुझे छोड़ देगा। माता ने तत्काल आज्ञा देती हुई बोली– हाँ–हाँ बेटा तू संन्यास ले लेना। माता ने सोचा कि संन्यास लेने की आज्ञा देने मात्र से यदि पुत्र का प्राण बच जाय, तो ऐसा ही सही। मगर ने शंकर को छोड़ दिया।[1] ग्राह भी क्या था उस जन्मसिद्ध महायोगी की योगमाया रूप क्रीड़ापुत्तलिका ही तो था। शंकर जन्मसिद्ध योगी थे। इसलिये बचपन से ही इसका लक्षण घटित होने लगे गया था। योगशास्त्र में स्पष्ट कहा है कि–

'जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः।।योगसूत्र. ३।१।।

जन्म से होने वाली सिद्धि, औषधियों से होने वाली सिद्धि, मन्त्रों से होने वाली सिद्धि, तप से होने वाली सिद्धि और समाधि से होने वाली सिद्धि– ये पांच प्रकार की सिद्धि होती हैं। इन्हीं को जन्मजा सिद्धि, औषधिजा सिद्धि, मन्त्रजा सिद्धि, तपोजा सिद्धि और समाधिजा सिद्धि आदि के नाम से कहते हैं। शंकर तो जन्मसिद्ध योगी ठहरे इसलिये आकाशगमन, परकाया प्रवेश आदि सिद्धि जन्म से प्राप्त थे। अभिप्राय यह है कि येन केन प्रकारेण शंकर को अपनी माता से संन्यास के लिये आज्ञा प्राप्त करनी थी आज्ञा मिल गयी।

१. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के लिखित 'शंकर दिग्विजय' की एक टिप्पणी में लिखा है कि- वह मगर पूर्वजन्म में गन्धर्वराज पुष्परथ था, किसी शाप वश वह मगर योनि में आ गया था। शंकर के चरणस्पर्श से वह शापमुक्त होकर पूर्वावस्था को प्राप्त हो गया। इसलिये शंकर का प्राणहरण नहीं किया।

थोड़े दिन के बाद शंकर को संन्यास के लिये तैयारी करते देखकर माता को अपार दुःख हुआ और पुत्र को समझाते हुए कहने लगी कि– कच्ची उमर में संन्यासी नहीं बनते हैं बेटा, तुम ओर कुछ दिन ठहर जाओ। 'शंकर ने कहा– माँ! आप किंचित् मात्र चिन्ता न करें, मैं आपकी पूरी व्यवस्था करके ही घर का त्याग करूँगा। माँ! मैं यह भी बतला देता हूँ कि मैं जहाँ पर भी रहूँगा आप मेरा स्मरण करते ही मैं आपके पास पहुँच जाऊँगा। दूसरी बात आपकी म त्यु के समय मैं आपको भगवान् का दर्शन भी करा दूंगा और तीसरी बात मैं स्वयं आपका अन्तिम संस्कार करूँगा। इसके बाद माता की सारी व्यवथा करके घर का त्याग करते समय माता को प्रणाम कर अन्तिम बार विदाई की आज्ञा माँगी। बेचारी माँ करती ही क्या, क्योंकि संन्यास लेने की आज्ञा तो पहले ही दे चुकी थी, अब ननु न च करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

एक लम्बी सांस लेती हुई बोली– ठीक है बेटा तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो। परन्तु स्वधर्म का परित्याग कदापि न करना, पथभ्रष्ट होकर भटक मत जाना और तुम साधना में सिद्धि प्राप्त करो मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

शंकर अपनी माता से आशीर्वाद लेकर पैदल ही घर से निकल पड़े। उत्तर दिशा की ओर यात्रा प्रारम्भ की, क्योंकि शंकर ने विद्याध्ययन काल में किसी सहपाठी से सुन रखा था कि नर्मदा के तट पर ओंकारेश्वर क्षेत्र में गोविन्दपाद नामक एक महान् सिद्ध योगी निवास करते हैं जो समाधिनिष्ठ उच्च कोटि के योगी पुरुष हैं। उन्हीं को लक्ष्य में रखते हुए उत्तर दिशा की ओर लगातार पैदल यात्रा की। मार्ग में कितनी नदियाँ, वन–पर्वत, ग्राम–नगर तथा मैदानों को पार करते हुए, कितने ही बाधा–विघ्नों को दूर करते हुए, कितने ही अनिन्द्रा अनाहार आदि को सहन करते हुए आखिरकार एक दिन शंकर नर्मदा के पावन तट पर स्थित ओंकारेश्वर क्षेत्र में पहुंच ही गये। वहाँ पर किसी महात्मा से योगीराज गोविन्दपाद का निवास स्थान के विषय में पूछनें पर उन्होंने अंगुली संकेत से दूर उस गुफा को बता दिया जहाँ पर वे समाधि में बैठे थे।

शंकर ने उस गुफा के पास जाकर खड़े हुए और गुफा के द्वार को प्रणाम करके तीन बार परिक्रमा की। फिर शान्त हृदय वाले शंकर ने आचार्य पाद की स्तुति प्रारम्भ की। इससे गोविन्दपाद की समाधि टूट गई और सम्मुख खड़े शंकर का आपादतलमस्तक पर्यन्त निरीक्षण किया। शंकर की आसाधारण प्रतिभा को देखकर आचार्य गोविन्दपाद प्रसन्न हुए। वे मन ही मन सोचने लगे कि इस

बालक के तजोमय मुखमण्डल और नेत्रों से असाधारण ज्योति प्रकट हो रही है। इससे यह बालक दैवी सम्पन्न है, इसमें अवश्य ही महापुरुष बनने का बीज निहित है जो आगे विकसित होकर संसार के किसी महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कर सकेगा। इस प्रकार विचार कर गोविन्दपाद ने पात्र परीक्षा के लिये उससे पूछा– 'तुम कौन हो? तब शंकर ने विनम्रतापूर्वक आत्मज्ञान सूचक ये शब्द बोले–

'स्वामिन्नहं न प थिवी न जलं न तेजो
न स्पर्शनो न गगनं न च तदगुणा वा।
नापीन्द्रियाण्यपि तु विद्धि ततो वशिष्टो
यः केवलो स्ति परमः स शिवो हमस्मि।।'

हे स्वामिन्! मैं प थ्वी नही हूँ, न जल हूँ, न तेज हूँ, न वायु हूँ, न आकाश हूँ, न उनके गुण हूँ, और न इन्द्रिय हूँ, किन्तु इन सबसे परे अवशिष्ट जो केवल परमतत्व शिव है वही मैं हूँ।'

शंकर के इस अद्वैतसाक्षात्कारात्मक वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इसी से मेरा कार्य पूर्ण होगा। ऐसा समझ कर शिष्य के रूप में ग्रहण कर लिया। श्रुति में भी कहा है कि–

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।मुण्डक. १।२।६२।।

उस नित्य–शाश्वत ब्रह्मतत्व का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा लिये श्रोत्रिंय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाय– यही श्रुति का आदेश है।

शंकर का गोविन्दपाद के शिष्यत्व ग्रहण-

शिष्य की योग्यता को देखकर आचार्य गोविन्दपाद ने शंकर को सन्यास दीक्षा देने के लिये विचार करने लगे, क्योंकि उस समय जैन धर्म, बौद्ध धर्म, कापालिक तथा तांत्रिक आदि अनेक मत–पंथ उठ खड़े हो गये थे और वैदिक धर्म को प्रभावित करने लगे थे। बहुत से वैदिक धर्मी अपने धर्म–कर्मों को छोड़कर उन नवीन मत पन्थों में प्रवेश कर रहे थे, उस पर रोक लगाना आवश्यक था। इसलिये गोविन्दपाद ने सोचा कि शंकर जैसे वैदिक धर्मी ही इस कार्य को सम्पादन कर सकता है। यही सोचकर उन्होंने शंकर को एक शुभ पर्व पर वैदिक विधि–विधान के अनुसार संन्यास की दीक्षा प्रदान की। गुरु ने उनका संन्यास नाम रखा शंकर भगवत्पादाचार्य; परन्तु शंकर नाम उनका इतना प्रसिद्ध हो गया

था कि उसी नाम से वह प्रसिद्ध हुए।

शंकर ने गोविन्दपाद से संन्यास दीक्षा प्राप्त कर फिर गुरु मुख से ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् तथा गीतादि शास्त्रों का अध्ययन किया और साथ ही सोग–साधन भी सीखने जाते थे। आचार्य गोविन्दपाद ने भी ऐसा अधिकारी शिष्य को प्राप्त कर समस्त विद्या उनको प्रदान की। उन्होंने योगद ष्टि से देख लिया था कि इसी के द्वारा अपने अद्वैतमत का विस्तार होगा। शंकर ने भी गुरु प्रदत्त सारी विद्या ग्रहण कर ली। एक वर्ष में हठयोग सिद्ध कर लिया, दूसरे वर्ष में राजयोग सिद्ध कर लिया और समाधि के द्वारा आत्मदर्शन प्राप्त कर लिया। तीसरे वर्ष में ज्ञानयोग के द्वारा अद्वैत ब्रह्मानुभूति प्राप्त कर ली और चौथे वर्ष में आकाशगमन, परकाया प्रवेश और विभिन्न प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कर लीं।

एक दिन आचार्य गोविन्दपाद ने शंकर स्वामी को पास बुलाकर गंभीर स्वर में बोले– शंकर! मेरे सान्निध्य में रहकर तुम पूर्ण बन गये हो प्रसन्नता की बात है। ब्रह्मविद्या और योग विद्या दोनों तुम्हे प्राप्त हो गई हैं। योग–विभूतियाँ भी प्राप्त कर ली हैं। अब तुम्हे एक बड़ा कार्य सम्पन्न करना है।, अद्वैत ब्रह्मज्ञान को अब नवीन ढंग से प्रचारित करना है। लुप्त तीर्थों को पुनरुद्धार करना है। वैदिक धर्म में अनेक अधर्म घुस गये हैं उन्हें दूर करना है। केवल मानव समाज में ही नहीं किन्तु साधु–समाज में भी भ्रष्टाचार घुस गया है। उन सबका उन्मूलन कर भारतवर्ष को एक आध्यात्मिक जगत् के रूप में पुर्नजीवित करना है, पुनर्गठन करना है। आज मानव समाज में धर्म तथा ईश्वर विश्वास घटता जा रहा है अध ार्म तथा अनास्था भाव पनप रहे हैं उन्हें ठीक रास्ते पर लाना है। जीव और ब्रह्म की एकता का पाठ पढ़ाना होगा जो वैदिक मत है। तुम्हारे जैसे योग्य पुरुष के द्वारा इन कार्यों को सम्पादन करने के लिये ही मैं इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था। अब इन कार्यों को तुम्हें दत्तचित्त होकर करना होगा। मैं तुम्हे आशीर्वाद के साथ आज्ञा करता हूँ कि तुम काशीधाम जाकर भगवान् विश्वनाथ से प्रस्थानमयी पर भाष्य करने का आदेश प्राप्त करो और अद्वैतवाद का प्रचार–प्रसार करके वैदिक धर्म का पुनः उद्धार करो। यही मेरा तुम्हारे प्रति आदेश है। अधिकारिक शिष्य ने भी गुरु का आदेश शिरोधार्य कर लिया।

शंकर का काशीधाम गमन

गुरु का आदेश मिलने पर शंकर स्वामी ने भी काशी जाने के लिये पूरी

तैयारी कर ली और दूसरे दिन गुरु के श्री चरणों में मस्तक रखकर गुरु का आशीर्वाद लेकर काशीधाम के लिये रवाना हो गये। कुछ दिनों में ही शंकर स्वामी काशीधाम जा पहुँचे। उन दिनों में काशी भारत का आध्यात्मिक विद्यापीठ तथा धर्म का केन्द्र था। साधु, ब्राह्मण, विद्वान्, पण्डित एवं परिव्राजक संन्यासियों का यहाँ विराट केन्द्र था। मन्त्रपाठ, शास्त्र व्याख्या तथा स्तव गुंजन से शिवपुरी काशी नगरी के पथ और घाट सदा मुखरित रहा करते थे। किसी नया मत का प्रचार के लिये काशी के विद्वानों का सहमत होना आवश्यक समझा जाता था। अतः शंकर ने अपने कार्यक्षेत्र की स्थापना काशीपुरी में की। मणिकर्णिका घाट के पास अपने अनुयायियों के साथ उन्होंने आसन जमाया। तेजस्वी युवा संन्यासी चतुर्दिक लोगों के कौतुहल की सीमा न रही। उनके द्वारा प्रचारित मत काशी के जन–जीवन में एक प्रचण्ड आन्दोलन की स ष्टि कर दी।

इस युवा यतिवर्य के प्रभाव से बड़े–बड़े विद्वान् पण्डित, संन्यासी और शास्त्रविद् उन दिनों काशी में एकत्रित हुए। शंकर ने अद्‌भुत तर्कशक्ति से प्रतिपक्षी के मतों का खण्डन कर अद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की। शास्त्र विचार की रणभूमि में वे एक अद्वितीय प्रतिद्वन्दी विहीन योद्धा थे। उनके दर्शन और उपदेश से संसार का मोह–बंधन अविलम्ब शिथिल पड़ जाता था। वास्तव में यति शंकर एक अद्‌भुत ज्ञान के अक्षय भण्डार थे। इसी से उनके लोकोत्तर ज्ञान और योग से अलंक त ऐश्वर्य आदि से काशी के नर–नारी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उनकी विद्वत्ता का धाक काशी में जम गया था और यतिवर शंकर के शिष्यत्व ग्रहण कर रहे थे। उन्हीं दिनों में एक चोल देश के ब्राह्मण बालक उनके दर्शन के लिये आया और उनके दर्शन के साथ ही उन्होंने शंकर के शिष्यत्व ग्रहण किया जो आगे चलकर पद्‌मपाद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

काशी आने के बाद यतिवर शंकर आचार्य पदवी से विभूषित हो चुके थे इसलिये वहाँ वे शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। आचार्य शंकर के काशीवास के काल में कई ऐसी अद्‌भुत घटनाएं हुई थी जिनमें एक यह भी है कि–

एक दिन आचार्य शंकर प्रातःकाल अपने शिष्यों सहित गंगास्नान के लिये मणिकर्णिका घाट की ओर जा रहे थे। इतने में मार्ग में एक भीमकाय चाण्डाल सामने आ गया, उसके साथ कई विकराल कुत्ते थे। स्नान तर्पण कार्य में उनके स्पर्श से बचने के लिये शंकर ने कुछ दूर हटते हुए उनसे कहा– थोड़ा उधर हट जाओ भाई हमें निकल जाने दो। यह सुनकर वह चाण्डाल अट्‌टहास

करते हुए ज्ञानगर्भित कण्ठ से चमत्कार पूर्ण श्लोक उच्चारण करने लगे।

वे विस्मित होकर मौनभाव से सुनते रहे। उनके उच्चारित श्लोकों के अर्थ इस प्रक़ार हैं कि– 'आचार्य! आप किसे हटने के लिये कह रहे हो, मेरी आत्मा को या इस देह को? यदि मेरी आत्मा को हटने के लिये कहते हो, तो यह आत्मा तो सर्वव्यापी हैं वह कैसे हटे और हटकर कहाँ जायेगी? असंग निर्लेप आत्मा की पवित्रता अपवित्रता ही कैसी? और यदि आप मेरे इस शरीर को हटने के लिये कहते हो, तो क्या वह इस आदेश का पालन कर सकेगा? क्योंकि वह तो जड़ है।

यह कैसा आश्चर्यजनक द श्य है शंकर के सामने? चाण्डाल के वेष में वह कौन है? शंकर के सामने आशुतोष भगवान् शिवजी की प्रतिमूर्ति उद्भाषित हो उठी। उन्हें ज्ञात हुआ कि–ठीक तो है, गुरु के आदेश से युगाचार्य की महान् भूमिका में आज उत्तीर्ण हुए हैं। संस्क त पुरुष के लिये थोड़ी सी अशुद्धि रहने से काम कैसे चलेगा? आत्मशुद्धि के साथ–साथ बाह्यशुद्धि की भी तो आवश्यकता होती है। प्रज्ञानघनमूर्ति शिवजी आज उनके सम्मुख प्रकट है। प्रसन्नतापूर्वक मधुर कण्ठ से उन्होंने कहा –'यतिवर! सबसे ऊपर उठकर अब आप अद्वैत तत्त्व के धारणकर्ता और उसका संबाहक बनो। आपके कार्य से मैं प्रसन्न हूँ, अब जगत के कल्याणार्थ अद्वैत ज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिये प्रस्थानत्रयी पर वैदिक भाष्य की रचना करो और वैदिक ज्ञान की अवरूद्ध धारा को ध्वस्त कर दो तथा अद्वैतवाद का चारों दिशाओं में विस्तार करो।' इतना कहकर भगवान् शिव अर्न्तद्धान हो गये।

इस प्रकार भगवान् विश्वनाथ का आदेश मिल जाने पर आचार्य शंकर ने भी उसे स्वीकार कर लिया, क्योंकि गुरु ने तो पहले ही आदेश दे चुके हैं। इसीलिये आचार्य शंकर सोच–विचार करने लगे कि कार्य कहां से प्रारम्भ करें। उनको अचानक स्मरण हो आया कि उनके परम गुरु (दादागुरु) आचार्य गौड़पाद अद्वैतवाद के एक उद्भट विद्वान पुरुष थे, उनकी 'माण्डुक्यकारिका' नाम की एक सुन्दर रचना है सर्वप्रथम उसी पर भाष्य लिखा जाये। यही कारण है कि आचार्य शंकर ने सर्वप्रथम 'माण्डुक्य कारिका' पर ही भाष्य की रचना की है।

आचार्य शंकर ने अनुभव किया कि भाष्य के लिये बहुत कम समय मिल पाता है। शिष्यों को पढ़ाने, व्याख्यान तथा उपदेश आदि कार्यों में बहुत समय उनका चला जाता है। वे जानते थे कि वे अल्पायु होकर जन्मे हैं। अतः

प्रस्थानत्रयी का भाष्य हिमालय के किसी एकान्त स्थान में बैठकर किया जाय। अतः शंकर ने सनन्दन आदि कतिपय शिष्यों को साथ लेकर उत्तर दिशा की ओर चल पड़े और शिष्यों सहित आचार्य शंकर मायापुरी (हरिद्वार) जा पहुंचे। उत्तराखण्ड के चारों धामों की यात्रा हरिद्वार से ही प्रारम्भ होती है। इसलिये आचार्य शंकर बद्रीनाथ धाम के लिये शिष्यों सहित पैदल ही चल पड़े।

आचार्य शंकर कई दिनों तक पैदल चलकर बद्रीनाथ धाम जा पहुंचे। वहाँ जाकर तप्तकुण्ड में स्नान करके जब मन्दिर दर्शन के लिये गये तो वहाँ देव–मूर्ति नहीं थी। आचार्य द्वारा मन्दिर में देव विग्रहं न होने का कारण पूछने पर वहाँ के पण्डों ने कहा कि एक समय में डाकुओं के भय से मन्दिर के विग्रह को नारदकुण्ड मैं तत्कालीन पण्डों ने छिपा दिया था। तब से मन्दिर में शालीग्राम शिला की ही पूजा–अर्चना होती आ रही है। यह बात आचार्य शंकर को अच्छी नहीं लगी। एक दिन उन्होंने नारदकुण्ड से पद्मासनबद्ध एक चर्तुभुज नारायण मूर्ति को निकालकर मन्दिर में वैदिक विधान पूर्वक पुनः स्थापित किया और तब से अब तक उसी नारायण मूर्ति की पूजा–अर्चना होती आ रही है। उसके पश्चात् आचार्य शंकर शिष्यों समेत व्यासतीर्थ के व्यासगुफा में चले गये। अलकनन्दा और केशवगंका के संगम पर व्यासगुफा है जो महर्षि व्यास जी की तपोस्थली है उसी में शंकर ने आसन जमाया। इस एकान्त शान्त पवित्र गुफा में बैठकर आचार्य शंकर ने महीनों लगाकर प्रस्थान त्रयी (ब्रह्मसूत्र, द्वादश उपनिषद् और गीता) पर प्रसन्नगंभीर भाष्य की रचना की। अलौकिक प्रतिभा की दीप्ति तथा अद्वैत तत्व के निर्णय की द ष्टि से उनके भाष्य आज भी विश्व–मानव के ज्ञान–भण्डार में अक्षय सम्पद के रूप में विद्यमान है।

आचार्य शंकर की अलौकिक शक्ति तथा प्रतिभा को देखकर ज्योतिर्धाम के राजा ने उनके श्री चरणों में शिष्यत्व ग्रहण किया। इस राजशिष्य की सहायता से उनके सभी ग्रन्थों की प्रतिलिपि सर्वत्र प्रचारित होने लगी। व्यास गुफा में प्रस्थानत्रयी की भाष्य–रचना समाप्त हो जाने पर आचार्य शंकर को हिमालय के तीर्थों का दर्शन करने की इच्छा हुई। इसलिये वे बद्रीनाथधाम से ज्योतिर्धाम चले आये, वहाँ ज्योतिर्धाम के राजा ने आचार्य का उनके शिष्यों सहित भव्य स्वागत किया। वहाँ पर थोड़े दिन रहकर केदारनाथ के लिये चले गये और साथ में सेवकों सहित राजा भी थे। केदारनाथ का दर्शन करके सबके सब बुद्धाकेदार होकर गंगोत्री धाम पहुंच गये। वहाँ पर गंगा स्नान के पश्चात् गंगा जी

की स्तुति की। वहाँ पर भी मन्दिर न देखकर आचार्य शंकर खिन्न हुए। उस समय तक यात्रीगण गंगोत्री जाकर गंगा स्नान करके भागीरथ शिला का ही दर्शन–पूजन आदि करके चले जाते थे। वहाँ पर आचार्य शंकर ने ज्योतिर्धाम के राजा से कहकर एक गंगा–मन्दिर और एक शिव मन्दिर को निर्माण करा दिया गया जो आज भी साक्ष्य दे रहे हैं।

उत्तरकाशी में व्यास और शंकर का शास्त्रार्थ-

कुछ दिन तक गंगोत्री धाम में निवास करने के अनन्तर आचार्य शंकर अपने शिष्यों सहित उत्तरकाशी पधारे और ज्योतिर्धाम के राजा अपने सेवकों सहित अपने निवास स्थान वापस चले गये। उत्तरकाशी ऋषि–मुनि, साधु–संन्यासी तथा योगियों की तपोभूमि है। आचार्य शंकर उत्तरकाशी में रहकर अत्यन्त आनन्द अनुभव किया। प्रतिदिन ब्रह्मसूत्र भाष्य शिष्यों को पढ़ाते थे, क्योंकि आचार्य ने एक नियम बना रखा था कि वे जहाँ पर भी जाते प्रातः और सायं प्रस्थानत्रयी का पठन–पाठन चालू रखते थे– यह उनके नित्य का नियम था। उत्तरकाशी में भी पाठ चला रहे थे।

एक दिन अचानक एक बूढ़ा ब्राह्मण आकर ब्रह्मसूत्र त तीय अध्याय के प्रथम सूत्र पर शंकर स्वामी से शंका कर बैठे। दोनों में शास्त्रार्थ होने लगा। आठ दिन तक शास्त्रार्थ होते रहे। प्रतिदिन वह ब्राह्मण न जाने कहां से आकर शास्त्रार्थ में भिड़ जाते थे। आचार्य शंकर के शिष्य पद्मपाद आश्चर्य में थे कि इस प्रकार से भयंकर शास्त्रार्थ करने वाले वह कौन आ गया है? ध्यान लगाकर देखा तो पता चला कि– वे तो साक्षात् व्यासमुनि ब्राह्मण वेश में उपस्थित है। तब पद्मपाद ने दोनों शास्त्रार्थ महारथियों से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि–

'शंकरः शंकरः साक्षाद् व्यासोनारायण स्वयम्।
तयोर्विवादे संप्राप्तेन न जाने किं करोम्यहम्।।''

हे शंकर! आप तो साक्षात् शंकर ही हैं और व्यास जी साक्षात् नारायण, आप दोनों के शास्त्रार्थ रूप विवाद उपस्थित हो जाने पर हे गुरुदेव! मैं आपका किंकर (दास) क्या करूँ? अतः आप दोनों शान्त हो जाईये– यह मेरी प्रार्थना है।'

व्यासमुनि अब अपने वास्तविक स्वरूप को छिपा न सके और असली रूप में प्रकट हो गये (क्योंकि व चिरंजीवी है)। आचार्य शंकर उन्हें पहचान लिया और उनका अभिवादन किया। व्यास जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और शंकर से बोले– आपकी आयु तो १६ वर्ष की है यह भी समाप्त हो रही है। मैं आपको १६ वर्ष आयु

ओर देता हूँ– वेदान्त का प्रचार और वैदिक सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करो। इतना कहकर व्यास जी अन्तर्द्धान हो गये। आचार्य शंकर ने भी इस आदेश का पालन करने में क तसंकल्प हुए। हिमालय से उतर कर सीधा प्रयागराज की ओर चल पड़े। वहाँ जाकर कुमारिल भट्ट के सम्मुख खड़े हुए और कहा कि– 'हे महात्मन्! मै। आपके साथ शास्त्रार्थ करने के लिये आया हूँ। कुमारिल ने कहा– यतिवर्य! मैं जानता हूँ कि आप गोविन्दपाद के शिष्य है और आपकी अलौकिक शक्ति–सामर्थ्य की बात सुनी है। परन्तु आचार्य! आप असमय में यहाँ आ गये हैं, क्योंकि मैंने संकल्प कर लिया है कि तुषानल में प्रवेश करके गुरुद्रोह का प्रायश्चित्त करूँगा। महिष्मती नगरी में मेरा शिष्य मण्डनमिश्र है आप उन्हीं से शास्त्रार्थ करें। उसकी हार से मेरी ही हार समझियेगा।

कुमारिल से विदा होकर आचार्य शंकर महिष्मती की ओर चल पड़े। महिष्मती नगर पहुंच कर शिष्यों समेत शंकर एक शिवमंदिर में ठहर गये। दूसरे दिन मण्डन मिश्र के घर का पता लगाकर उनसे शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव रखा, तो मण्डन मिश्र भी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और शास्त्रार्थ मे जो हारेगा वह विजय प्राप्त करने वाले का शिष्यत्व ग्रहण करना होगा। इस शर्त पर शंकर और मण्डल मिश्र के शास्त्रार्थ का दिन निर्धारित हुआ।

यह शास्त्रार्थ भी बड़ा भयंकर था– १८ दिन तक शास्त्रार्थ चला। इस शास्त्रार्थ का मध्यस्थ थी मण्डन पत्नी उभय भारती। अन्त में मण्डन मिश्र शास्त्रार्थ में हार गये। निरुत्तर होकर हार स्वीकार कर ली। उभय भारती ने शंकर को विजया घोषित किया। आचार्य शंकर मण्डन को संन्यास देने की लिये आगे बढ़े। परन्तु उभय भारती रोकती हुई बोली– 'यतिवर! आप उनका एक अंग ही जीता है। दूसरा अभी बाकी है– यह मैं हूँ। अब आप मेरे से शास्त्रार्थ करें। आचार्य शंकर इस शास्त्रार्थ को टालना चाहते थे, किन्तु उभय भारती एक न मानी। तब शंकर ने कहा– देवी! शास्त्रार्थ अभी और इसी सभा में होना चाहिये। उभय भारती तो तैयार थी ही अपने पति का पक्ष को लेकर शास्त्रार्थ करने लगी और शंकर पूर्ववत् अद्वैत पक्ष को लेकर शास्त्रार्थ करने लगे। आचार्य शंकर ने दो तीन पारी में ही उभय भारती के मत को भी बड़े जोरदार ढंग से खण्डन कर दिया।

उभय भारती ने जब देखा कि अपने पक्ष के सारे तर्क सारी युक्तियाँ तथा शास्त्र–प्रमाण आदि निरस्त हो चुके हैं, तब उन्होंने दूसरे तरीके से जीतने की

इच्छा से रति शास्त्र सम्बन्धी कई प्रश्न कर डाले। आचार्य शंकर प्रश्नों को सुनते गये परन्तु उत्तर देने का प्रयास नहीं किया और बोले कि– 'देवी! इन प्रश्नों का उत्तर मैं अवश्य दूंगा, पर मैं कुछ दिन का समय मांगता हूँ। उभय भारती ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करती हुई बोली कि– एक महीने के अन्दर इन प्रश्नों का उत्तर देना होगा, अन्यथा मेरे पति को आप संन्यासी नहीं बना सकते हैं।

आचार्य शंकर वहाँ से अपने शिष्यों सहित अन्यत्र चले गये और एक पहाड़ की गुफा में डेरा डाले। एक दिन ध्यान के द्वारा देखा कि अमरूक राजा का देहान्त हो गया। इस अवसर का लाभ उठाते हुए शिष्यों को सारी बातें समझा कर उन्होंने परकाया प्रवेश किया। अमरूक राजा के शरीर में प्रवेश करके थोड़े ही दिनों में रतिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके अपने पूर्व शरीर में लौट आये। उसके पश्चात् उभय भारती के प्रश्नों का उत्तर रूप में एक लघु कलेवर युक्त श्लोकबद्ध 'अमरूशतक' नामक पुस्तक लिखकर महिष्मती नगरी में आकर उभय भारती को दे दी और उभय भारती पराजय स्वीकार कर ली। उसके बाद आचार्य शंकर ने मण्डन मिश्र को विधिवत् संन्यास दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया। मण्डन मिश्र का संन्यास नाम 'सुरेश्वराचार्य' रखा गया जो आगे चलकर वार्तिककार के नाम से भी प्रसिद्ध हुए।

शंकर की मल्लिकार्जुन यात्रा-

आचार्य शंकर अद्वैतवाद प्रचार के लिये शिष्यों सहित महिष्मती नगरी से चलकर नासिक पहुंचे। नासिक से पंढरपुर आदि स्थानों का परिभ्रमण किया। उसके बाद दिग्विजयी आचार्य के रूप में श्री शैल पर्वत पहुंचे।

उसी पर्वत पर मल्लिकार्जुन नामक एक जाग्रत ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठित था। उसी को केन्द्र करके आसपास में असंख्य शैव, शाक्त तथा कापालिक साधक निवास करते थे। आचार्य शंकर वहाँ पहुंचने पर उनसे वे शास्त्रार्थ करने आये और सबके सब पराजित होकर कुछ तो आचार्य जी के अनुयायी बने और कुछ उनके विरोधी शत्रु भी बन गये। वे सब एक राजा के संरक्षण में रहते थे। राजा और एक उग्रभैरव नामक कापालिक मिलकर आचार्य शंकर की हत्या करके मन की ज्वाला को शान्त करना चाहते थे। और उसके लिये अवसर देख रहे थे।

एक दिन सन्ध्या के समय उग्रभैरव बनावटी भक्त बनकर एकला बैठे

शंकर को प्रणाम कर वहाँ बैठ गये और बड़े दीन भाव से निवेदन करने लगे कि 'पूज्य आचार्य जी! मैं एक ऐसी साधना कर रहा हूँ कि जिससे भगवान् शिव का सान्निध्य प्राप्त हो सकता है। भगवान् शंकर ने मुझे स्वप्न में बताया है कि यदि तुम अपना अभीष्ट सिद्धि चाहते हो, तो मेरी प्रसन्नता के लिये एक चक्रवर्ती राजा या एक सर्वज्ञ ज्ञानी पुरुष का मस्तक अग्नि में हवन करोगे, तो मैं प्रसन्न हो जाऊँगा।

मैं समझता हूँ कि आज आपके द्वारा मेरा मनोरथ पूर्ण हो सकेगा, क्योंकि चक्रवर्ती राजा का मिलना तो असम्भव है, पर आप तो देहाध्यास से रहित तत्त्वज्ञानी पुरुष अवश्य है। अतः आपके द्वारा मेरा कार्य सिद्ध हो सकता है। उग्र भैरव की बात सुनकर आचार्य शंकर ने कहा कि 'यदि यह बात सत्य है, तो ठीक है मैं अभी समाधि लगा लेता हूँ, फिर तुम मेरा मस्तक को छेदन करके ले जाना। ऐसा कहकर आचार्य शंकर आसन जमाकर समाधि में बैठ गये और चित को ब्रह्म में लगा लिया। उग्रभौरव कापालिक ने कपड़े में छिपा रखा खंग (तलवार) को निकाल कर इधर उधर देखने लगे। इतने में ध्यानस्थ पद्मपाद को न सिंहदेव का आवेश हुआ और एक बड़े जोर से हूंकार भरते हुए उस कापालिक पर टूट पड़ा और उसी के खंग से उसका मस्तक गर्दन से अलग कर दिया। ब्रह्मनिष्ठ पुरुष का अनिष्ट साधन करने वालों की ऐसी ही गति होती है। आचार्य शंकर निर्विकार समाधिष्ठ बैठे पाया गया। उग्रभैरव का अन्त हुआ और जिसका परिणाम स्वरूप वहाँ के तमाम शैव–शाक्त तथा कापालिक वैदिक धर्म के अनुयायी बने।

उसके बाद आचार्य शंकर वहां से चलकर मूकाम्बिका आदि शक्ति पीठों का दर्शन करते हुए श्रीवली जा पहुंचे। पण्डित प्रभाकर वहां के प्रतिष्ठित विद्वान थे, परन्तु मन में जरा भी सुखी नहीं था। पण्डित का एकमात्र पुत्र मूर्ख था। वह मानों मनुष्य ही नहीं था' केवल एक मांस पिण्ड मात्र था। पण्डित प्रभाकर ने जब सुना कि आचार्य शंकर श्रीवली में आये हुए हैं तो अपना मूक (गूंगा) पुत्र को साथ लेकर दोनों पति–पत्नी शंकर के दर्शन के लिये गये। वहाँ जाकर आचार्य जी को प्रणाम आदि करके उस बालक की ओर संकेत करते हुए कहा– प्रभो! मेरे इस अभागे बालक की ओर एक बार देखिये इसकी क्या दशा है– न वह बोलता है न हंसता है बिल्कुल ही मूक है। इसे लेकर मैं ओर मेरी पत्नी बहुत दुःखी हूँ। अतः आप इस पर थोड़ी क पा द ष्टि कीजिए जिससे उसका मूक भाव समाप्त हो जाय।

यह सुनकर आचार्य ने वात्सल्य भाव से बालक से पूछा–

'कस्त्वं शिशो! कस्य कुतो स्तिगन्ता
किं नाम ते त्वं कुतो आगतो सि।
एतनमयोक्तं वद चार्भक!
त्वं मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनो सि।।

शंकर– हे शिशो! तू कौन है? किसका है? तू कहाँ जायेगा? तेरा नाम क्या है? तू कहाँ से आया है? हे बालक! मेरी प्रसन्नता के लिये मेरे द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर दो! तू मेरी प्रसन्नता को बढ़ाने वाला है।' आचार्य के द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए बालक बोल उठा–

'ना हं मनुष्यों न च देव यक्षौ
न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य शूद्राः।
न ब्रह्मचारी न ग ही वनस्थो
भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः।।' हस्तामलकस्तोत्र।।

आचार्य! मैं मनुष्य नहीं हूँ, ब्रह्मचारी नहीं हूँ, ग हस्थ, वानप्रस्थ आदि नहीं हूँ और संन्यासी भी नहीं हूँ, किन्तु स्वयं प्रकाश ज्ञान स्वरूप असंग निर्लेप विशुद्ध आत्मा हूँ। इसलिये मैं किसी का भी नहीं हूँ। अखण्ड परिपूर्ण व्यापक चिद्रूप मुझ आत्मा में आना जाना कहाँ? निरवयव आत्मा का नाम भी कैसा? यही उत्तर आपकी प्रसन्नता का कारण होगा।

इस प्रकार से कईं श्लोकों के द्वारा उसने अपना स्व–स्वरूप का परिचय दिया। बालक के मधुर संस्क त श्लोकबद्ध वाणी सुनकर वहाँ पर बैठे सभी प्रसन्न हुए। आचार्य शंकर ने ध्यान द ष्टि से उसके पूर्व–व तान्त को जान गये और कहाँ– प्रभाकर! वह जानबूझ कर नहीं बोलता नहीं सुनता है, यह एक आत्मज्ञानी महात्मा है। वह बालक आपके किसी मतलब का नहीं होगा। संसार के बन्धन में पड़ने वाला वह नहीं होगा। वह बालक ते हमारे ही पास रहने योग्य है, आज से मैं इसका भार लेता हूँ तब प्रभाकर और उसकी पत्नी आचार्य के श्री चरणों में बालक को सुपुर्द करके दुःखी मन से घर लौट गये। आचार्य शंकर के द्वारा संन्यास दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् उसका नाम पड़ा हस्तामलक।

श्र ंगेरी मठ की स्थापना

इसके बाद आचार्य शंकर अपनी शिष्य मण्डली को साथ लेकर दिग्विजय करते हुए श्र ंगेरी पहुंचे। वह स्थान प्राचीन काल के ऋषि विभाण्डक और ऋष्यश्र ंग

मुनि की तपस्थली है। इस स्थान की प्राक तिक सौन्दर्यता तथा पवित्रता को देखकर उनके अन्तरंग शिष्यगण भी उत्साहित तथा आनन्दित हो उठे। तब तक कर्णाटक के महाराजा सुधन्वा ने भी आचार्य शंकर के शिष्यत्व ग्रहण कर चुके थे। अतः इन सबके सहयोग से अल्पकाल में ही श्र ंगेरी मठ स्थापित हो गया। आचार्य शंकर ने उसी मठ में बड़े समारोह के साथ शारदा देवी की प्रतिष्ठा की।

आचार्य शंकर इसी श्र ंगेरी मठ में ही अधिक समय तक रहे और अनेकों छोटे–बड़े प्रकरण ग्रन्थों की रचना करते रहे हैं। श्र ंगेरी मठ की स्थापना काल में ही एक ब्राह्मण बालक जो गिरि नाम का था आचार्य की शरण मे ंआ गया था। यद्यपि वह बालक अधिक पढ़ा लिखा नहीं था फिर भी गुरु के प्रति उसकी अगाध ा श्रद्धा–भक्ति थी और गुरुक पा से वह धुरन्धर विद्वान बन गये थे। संन्यास के बाद गिरि जी 'तोटक' के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं

शंकर को अपनी माता का अन्तिम दर्शन

श्र ंगेरी मठ में बैठकर शंकर एक दिन पूर्ववत् शिष्यों को स्वाध्याय करा रहे थे। अकस्मात् वे विस्मित् हो उठे– यह कैसी विचित्र अनुभूति हो रही है। ध्यानस्थ होकर उन्होंने देखा कि– यह उनकी माता के आह्वान की प्रतिक्रिया थी। वे अन्तिम म त्युशैया पर पड़ी हुई थी, परन्तु संन्यासी पुत्र को एक बार देखे बिना शान्ति से वह मर नहीं पा रही थी। शंकर को स्मरण हो आया कि घर का परित्याग करते समय माता को यह वचन दे आये थे कि वे अन्तिम समय में मेरा स्मरण कर लेना मैं तुरन्त आपके पास पहुंच जाऊँगा और आपको भगवद् दर्शन करा दूंगा। यह बात शिष्यों को सूचित कर दिया। समय अधिक नहीं था पैदल चलने से काम नहीं चलेगा अतः शंकर अकेले ही आकाश मार्ग से घर पहुंच गये और अपनी स्नेहमयी माता का दर्शन तथा प्रणाम आदि किया। माता अपने पुत्र को देखकर सभी दुःख भूल गयी।

शंकर ने पूछा– 'माता! मेरे लिये क्या आज्ञा है?' माता बोली– 'इस अन्तिम समय में मैं तुम्हे भाग्यवश सकुशल देख रही हूँ इससे और मुझे क्या चाहिये? अब तुम ऐसा उपाय करो जिससे मेरी सद्‌गति प्राप्त हो। आचार्य शंकर ने भगवान् विष्णु की स्तुति की। शंकर वर्णित उस कमलनयन भगवान् विष्णु का हृदय में ध्यान करते हुए उस ब्राह्मणी ने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। शंकर ने माता का विधिवत् अन्तिम संस्कार पूर्ण करके वे पुनः दिग्विजय के लिये

निकल पड़े और अपने शिष्यों के साथ जा मिलें

आचार्य शंकर की पुनः दिग्विजय यात्रा

आचार्य शंकर की दिग्विजय यात्रा यद्यपि मण्डन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ के साथ ही हो गयी थी, परन्तु अबकी बार अपने पूरे शिष्य मण्डल को साथ लेकर यात्रा करने की इच्छा हुई, क्योंकि इससे यात्रा में सुविधा होती है। अतः शंकर पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक, तोटक तथा महाराजा सुधन्वा आदि को साथ लेकर दिग्विजय के लिये पुनः निकल पड़े। महाराज सुधन्वा के साथ कुछ कर्मचारी भी सम्मिलित थे।

मध्यमार्जुन का दर्शन

दक्षिण भारत की यात्रा में मार्ग में ही 'मध्यमार्जुन' नामक एक प्रसिद्ध देवस्थान आया। आचार्य शंकर ने बड़ी श्रद्धा–भक्ति पूर्वक उसकी पूजा–अर्चना की और साथ–साथ उनके शिष्यों ने भी पूजा अर्चना की। उसके अनन्तर आचार्य शंकर ने उस मध्यमार्जुन से प्रार्थना की कि– 'हे भगवन्! वेदादिक शास्त्रों का तात्पर्य द्वैत है अथवा अद्वैत? इस रहस्य को हमारे समक्ष सत्य–सत्य बोले और सबके अन्दर से इस संशय को दूर कर दें। शंकर की ऐसी प्रार्थना करने पर मध्यमार्जुन नामक शिवलिंग से इस प्रकार की ध्वनि निकल पड़ी कि– 'सत्यमद्वैतम्' 'सत्यमद्वैतम्' 'सत्यमद्वैतम्।' अर्थात् अद्वैत ही सत्य है, अद्वैत ही सत्य है, अद्वैत ही सत्य है।

अब यहाँ पर शंका यह होती है कि आचार्य शंकर तो पहले से ही अद्वैतवाद का प्रचार करते आ रहे थे, यहाँ मध्यार्जुन ने भी अद्वैत को ही सत्य कहा है इसमें नयी बात क्या हुई? नयी बात यह हुई कि अद्वैतवाद ही सत्य है इससे ओर भी द ढ़ निश्चयात्मक हुआ यह सिद्ध हुआ। अब देखना यह है कि वेदादिक शास्त्रों में इसका प्रमाण है अथवा नहीं।

अद्वैतपरक वाक्य

१. सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।। छान्दोग्य. ६।२।१।।
२. पुरुष एवेदं सर्वं यद्‌भूतं यच्च भव्यम्।।ऋक् १०।६०।२।।
३. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति.............।। ऋक्. १।१६४।४६।।
४. स एष एक एकव देकएव ।।अथर्व. १३।५।७।।
५. यो सावादित्ये पुरुषः सो सावहम्।।यजु. ४०।१७।।

६. अहमिन्द्रो[1] न परा ।।ऋक् १० ।४८ ।५।।
७. इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप इयते।।ऋक् ६ ।४७ ।१८।।
८. अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं............।।ऋक् ४ ।२६ ।१।।
६. अद्वयाः।।ऋक्. १ ।१८७ ।३।।
१०. शिवो द्वैत ।।माण्डूक्य. १२।।
११. सर्वं खल्विदं ब्रह्म।। छान्दोग्य. ३ ।१४ ।१।।
१२. द्वितीयाद्वैभयं भवति।।ब ह. उप. १ ।४ ।२।।
१३. म त्योः स म त्युमाप्नोति यह इह नानेव पश्यति।।कठ. २ ।१ ।१०।।

ये सब अद्वैत प्रतिपादक मंत्र है जो स्वतः प्रमाणवाक्य है। इनका भावार्थ नीचे दे रहे हैं पाठक देखें।

१. हे सोम्य! स ष्टि उत्पत्ति से पूर्व यह नामरूपामक जगत् नहीं था एकमात्र अद्वितीय सत् ब्रह्ममात्र विद्यमान था।
२. जो तो भूतकाल में उत्पन्न हुआ तथा जो भविष्यत् काल में उत्पन्न होगा और जो वर्तमान काल में विद्यमान है, यह सब कुछ पुरुष (ब्रह्म) रूप ही है।
३. तत्वदर्शी मेधावी विद्वान उस एक सर्वेश्वर को ही इन्द्र, मित्र, वरुण, एवं अग्नि आदि विविध नामों से कहते हैं। क्या वह अनेक है? नहीं, वह एक ही है एक का ही वे अनेक नाम और रूप मात्र है।
४. वह ब्रह्म एक था अनेक हुआ और अन्त में एक ही होगा। चूंकि जब एक ही चेतन तत्व–ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण रूप में विद्यमान है, तो वहाँ दूसरे चेतन के लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है– अंर्थात् अनवकाश है।
५. आदित्य मण्डल में जो वह पुरुष (ब्रह्म) है वह मैं ही हूँ।
६. मैं सचमुच ब्रह्म ही हूँ, भिन्न नहीं। तुलना करें उपनिषदों के महावाक्यों से 'तत्वमसि' (छान्दोग्य.६ ।८ ।७), 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐतरेय. उप. ३ ।३), 'अहं ब्रह्मास्मि' (ब ह. उप. १ ।४ ।१०), 'अयमात्मा ब्रह्म' (माण्डूक्य २)।
७. इन्द्र (ब्रह्म) अपनी मायाशक्ति के द्वारा अनन्त रूपों को धारण कर लेता है।

---

१. इन्द्रो ब्रह्मेति ।। कौ० ब्राह्मण. ६।१८।। इन्द्र ब्रह्म है।

८. हे इन्द्र! मैं जानता हूँ कि मैं ही प्रजापति मनु हूँ, मैं ही सबको प्रेरणा देने वाला सविता देव हूँ। मैं ही दीर्घतमा का मेधावी कक्षीवान नामक ऋषि हूँ, मैं ही अर्जुनीका पुत्र कुत्स नामक ऋषि हूँ और मैं ही क्रान्तदर्शी उशना ऋषि हूँ। मैं ही यह सब कुछ हूँ इसलिये मुझे सर्वात्मक रूप में देखें।

९. समस्त जगत् प्रपंच से रहित एकमात्र अद्वैत ब्रह्म ही विद्यमान है।

१०. द्वैत रहित एकमात्र परमशिवरूप अद्वैत ब्रह्म ही विद्यमान है अन्य कुछ नहीं है।

११. यह सब कुछ ब्रह्म ही है उससे भिन्न कुछ नहीं है।

१२. द्वैत में ही भय होता है अद्वैत में नहीं। अद्वैत अभयरूप है।

१३. वह मनुष्य म त्यु से म त्यु (बार–बार जन्म–मरण) को प्राप्त होता है जो नाना देखता है। अतः यहाँ पर एकात्मदर्शन का आदेश है।

उपरोक्त वेद–शास्त्रों के प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् 'मध्यार्जुन' ने जो वह कहा था– 'सत्यमद्वैतम्' यह कथन यथार्थ सत्य है, क्योंकि वेद–शास्त्रों में भरपूर इसका समर्थन मिलता है। वेद सम्मत होने से अद्वैतवाद पूर्णतः वैदिक है। इससे स्पष्ट है कि आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद का प्रवर्तन नहीं किया किन्तु अद्वैतवाद सिद्धान्त तो इस देश में पहले से ही विद्यमान था, उन्होंने केवल इसे नया जीवन मात्र दिया है। इस प्रकार से आचार्य शंकर अपने शिष्यों के साथ रामेश्वर क्षेत्र से ले कर सम्पूर्ण दक्षिण भारत की दिग्विजय यात्रा करते हुए कर्णाटक तथा महाराष्ट्र आदि होकर गुजरात प्रान्त पहुंचे। सौराष्ट्र में उस समय पांचरात्र सम्प्रदाय का बहुत बोलबाला था और उनसे शास्त्रार्थ करके उनको पराजित किया। फिर आचार्य शंकर उस प्रान्त के वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर तथा गाणपत्यादि मतों के आचार्यों को भी शास्त्रार्थ में पराजित करके वेदान्तमत में दीक्षित किया।

अवन्ती में जाकर भट्टभास्कर आदि दिग्गज विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अद्वैतमत में लाये। उसके बाद जैन विद्वानों से भी शंकर का शास्त्रार्थ हुआ। आचार्य शंकर ने अपनी प्रतिभा के बल जैन विद्वानों को भी पराजित कर दिया। जैनों के गर्व को नष्ट करके आचार्य शंकर आगे बढ़े और नैमिष क्षेत्र में अपने भाष्यों का विस्तार करते हुए दरद, भरत, सुरसेन, कुरु तथा पांचाल आदि देशों के बड़े बड़े नामधारी विद्वानों को शास्त्रार्थ में हराकर अपने मत में लाये।

उसके बाद आचार्य शंकर मगध देश में प्रवेश किया और वहाँ पर बौद्धों के साथ तुमुल वाक्‌युद्ध हुआ– शास्त्रार्थ हुआ। इस भयंकर शास्त्रार्थ में भी बौद्ध पण्डितों को पराजित कर शंकर ही विजयी हुए जिसका परिणाम स्वरूप बौद्धमत

ही लुप्तप्राय हो गया था। आचार्य शंकर बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित कर बंगाल होते हुए आसाम प्रान्त के कामरूप कामाख्या तक जा पहुंचे और वहां के तान्त्रिकों से भयंकर शास्त्रार्थ किया। उन तांत्रिकों में एक अभिनवगुप्त नाम का तांत्रिक भी था। ब्रह्मसूत्र के ऊपर 'शक्तिभाष्य' के लेखक अभिनवगुप्त को भी शास्त्रार्थ में शंकर ने पराजित कर दिया। इस हार से अभिनवगुप्त बहुत लज्जित हुए और अपना भाष्य तो फेंक दिया और ऊपर से शंकर का शिष्यत्व भी स्वीकार कर लिया। परन्तु पराजित होने का द्वेषाग्नि भीतर–भीतर धधकती रही और उस मन्दबुद्धि वाले ने यतिश्वर के प्रति अभिचार (मारण) प्रयोग कर दिया। जिससे आचार्य शंकर को भगन्दर रोग उत्पन्न हो गया। उनके शिष्यगण बहुत दुःखी हुए और वैद्यों से चिकित्सा कराई, परन्तु रोग दूर नहीं हुआ।

एक दिन पद्मपाद को स्वप्न में ज्ञात हो गया कि अभिनवगुप्त ने आचार्य शंकर का मारण प्रयोग किया है। तब पद्मपाद ने भी अपने गुरु को रोगमुक्त करने के हेतु मन्त्र का उल्टा प्रयोग किया। अर्थात् 'परमन्त्रं तु जजापः' उल्टा मन्त्र का जप प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम स्वरूप उसी रोग से पीड़ित होकर अभिनव गुप्त को म त्यु प्राप्त हुई और आचार्य शंकर रोगमुक्त होकर स्वस्थ हो गये। ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष का अनिष्ठ साधन् करने वाले कदापि सुखी नहीं हो सकता और यही हुआ।

आचार्य शंकर रोगमुक्त हो जाने के पश्चात् फिर से उद्यम उत्साह के साथ अंग, बंग, विदेह तथा कोशल आदि देशों के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित करके शंकर नेपाल राज्य में पहुंच गये। वहाँ पर भी बचे–खुसे बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त करके कुछ को अपने मत में ले आये। वहाँ पर पशुपति नाथ के दर्शन किये। उस समय नेपाल का राजा शिवदेव जी थे, वे अपुत्रक थे। आचार्य शंकर के आंशीर्वाद से शिवदेव जी को एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, उसका नाम रखा शंकर देव वर्मा। बाद में वही नेपाल के राजा बने। इस प्रकार से आचार्य शंकर ने नेपाल राज्य को भी बौद्धों के प्रभाव से मुक्त कर दिया।

इससे पता चलता है कि आचार्य शंकर एक महान् युगान्तरकारी महापुरुष थे जो विद्या, बुद्धि, तर्क, युक्ति एवं ज्ञानैश्वर्य तथा योगविभूति से सम्पन्न थे। यही कारण है कि शास्त्रार्थ में बौद्ध, जैन, पाशुपत, वैष्णव, पांचरात्र, कापालिक, शाक्त, गणपत्य, सौर, शैव, सांख्यीय, काणादीय, गौतमीय तथा मीमांसक आदि मत के अनेक बड़े बड़े धुरन्धर उद्भट विद्वान सामने आये और सबको अपनी तर्क शाक्ति से पराजित कर दिया। इस प्रकार से यतिराज शंकर ने मानो विरोधी मतों का एक प्रकार से दमन कर दिया।

कश्मीर का सर्वज्ञपीठ पर आरुढ़

कश्मीर– श्रीनगर से दूर पहाड़ी पर एक देवी का मन्दिर है जो चार द्वारों से युक्त है। उसी मन्दिर में एक सर्वज्ञ पीठ भी है और उस पीठ पर आरोहण करने से वह

पण्डितों में सर्वज्ञ माना जाता है। पूर्व के द्वार को पूर्व के सर्वज्ञ खोलता है। पश्चिम के सर्वज्ञ पश्चिम के द्वार को खोलता है, उत्तर के सर्वज्ञ उत्तर के द्वार को खोलकर भीतर प्रवेश करता है। परन्तु दक्षिण के द्वार प्रायः बन्द ही रहता है कोई भी खोल नहीं सकता। यह बात सुनकर दक्षिण के द्वार को खोलने के लिये यतिराज शंकर कश्मीर के देवी मन्दिर में जा पहुंचे, क्योंकि वे दक्षिणात्य केरल प्रान्त के थे।

दक्षिण के द्वार को खोलकर यतिराज शंकर ने ज्यों ही अन्दर प्रवेश करना चाहा त्यों ही वहाँ पर उपस्थित दार्शनिकों ने उन्हें रोका और शास्त्रार्थ करने के लिये ललकारा। फिर क्या था एक–एक करके सभी मत–मतान्तरों के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित करके सब को शान्त कर दिया। इस प्रकार यतिराज शंकर सबको परास्त करके सर्वज्ञपीठ पर आरूढ़ हुए और समस्त दार्शनिक विद्वानों के द्वारा सम्मानित होकर यतिराज शंकर इस प्रकार सुशोभित हुए कि जिस प्रकार अगनित तारों के बीच में चन्द्रमा। यतिराज शंकर सर्वज्ञपीठ पर आरूढ़ होकर सर्वज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

चारों मठों की स्थापना

यतिराज शंकर ने धर्म की रक्षा एवं देश की एकता के लिये भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये। पूर्व में गोवर्धन मठ, पश्चिम में शारदा मठ, उत्तर में ज्योतिर्मठ और दक्षिण में श्रृंगेरी मठ की स्थापना की। श्रृंगेरी मठ की स्थापना आचार्य जी ने सबसे प्रथम की थी। उन चारों मठों में अपने चार पट्टशिष्यों को पीठासीन करके सभी मठों के लिये विधि नियम आदि भी बांध दिये गये। उनके गुरु के आदेश उन्होंने अल्पकाल में ही पूर्ण कर दिया। अब समय नहीं है अतः अपना कार्य पूर्ण हुआ समझ कर अबकी बार अन्तिम केदारनाथ की यात्रा की, क्योंकि यही उनका प्रिय स्थान रहा है। उनके साथ कुछ संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा सद्‍गृहस्थ भी थे।

चन्द दिन में ही वह मुहूर्त भी आ गया अतः उन्होंने भवितव्यता को जानकर एक दिन प्रातःकाल अपना अन्तिम उपदेश देकर समाधिष्ठ हो गये और यही उनकी अन्तिम समाधि थी। पास में बैठे शिष्यों के मन में सन्देह उत्पन्न होने लगे कि गुरुदेव की समाधि अब खुलेगी अथवा नहीं। परन्तु आखिर तक शिवस्वरूप यतिराज की समाधि नहीं खुली, यही उनकी अन्तिम समाधि थी। उन्होंने पवित्र केदारक्षेत्र में अपना नश्वर शरीर को छोड़कर ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त हुए। सबके सब शिष्यगण शोक सागर में डूब गये। उसी केदार क्षेत्र में ही उनकी समाधि दी गयी और सबने वही अनुभव किया कि भारतवर्ष का ज्ञानसूर्य आज अस्तंगत हो गया। आज भी केदार क्षेत्र में दूर से उनका समाधि मन्दिर साक्ष्य दे रहा है। ○

-विज्ञानानन्द

(४) सिद्धयोगी तैलंग स्वामी

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश के भिजियाना ग्रामांचल में होलिया नामक बस्ती है। धर्मनिष्ठ नरसिंह राव वहाँ कई पीढ़ियों से रह रहे थे। अपनी पतिव्रता धर्मपत्नी विद्यावती के साथ देव तथा ब्राह्मणों की सेवा आदि धर्माचरण करते आ रहे थे। वर्षों बीत जाने पर भी इस दम्पति को कोई सन्तान नहीं हुई। वंश रक्षा की चिन्ता से नरसिंह बहुत चिन्तित थे। दूसरा कोई उपाय न देखकर उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया।

नरसिंह राव का घर एक शिवालय के समीप में ही था। अतः धर्मप्राणा विद्यावती जी प्रतिदिन शिवालय में जाती, पूजा–आरती और शिव–भगवान् से सन्तान प्राप्ति की प्रार्थना करती थी। अन्ततोगत्वा एक दिन देवता की क पा उसके ऊपर हो ही गई। विद्यावती ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। निःसन्तान नरसिंह का घर–आंगन आनन्द से पूर्ण हो उठा। भगवान् शिवजी की क पा से पुत्र प्राप्त हुआ था, इसलिये पुत्र का नाम भी –शिवराम' रखा गया। वह शिवराम ही आगे चलकर महासिद्ध योगी तैलंग स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ समय के बाद नरसिंह राव की दूसरी पत्नी से भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम श्रीधर रखा गया है।

बड़े लड़के बालक शिवराम में एक अद्भुत बात देखी जाने लगी। खेलकूद में बिल्कुल उसका मन नहीं लगता था। आंगन में जब अन्य बच्चे खेलकूद में मस्त रहते, पर शिवराम इनसे विमुख ही रहता था। कुछ बड़े होने पर किशोरावस्था ओर युवावस्था में भी उसी प्रकार की निःस्प हता एवं उदासीनता देखी गयी। शिवराम के सहज वैराग्य तथा विषय–विरक्ति आदि लक्षण किशोर अवस्था से ही लक्षित होने लग गया था जो वस्तुतः माता की शिक्षा ही इसका कारण था। शिवराम के लिये यह सौभाग्य की बात थी कि उसके अध्यात्म जीवन के मार्ग दर्शक उसकी माँ ही थी। माता के मार्ग दर्शन के कारण ही शिवराम आध्यात्मिक पथ के पथिक बने।

सांसारिक विषयों में पुत्र शिवराम को वैराग्य भाव देखकर नरसिंह राव चिन्तित रहने लगे। शिवराम अब युवक है और पिता का ज्येष्ठ पुत्र है। पिता को स्वभावत पुत्र के विवाह की चिन्ता हुई। पिता ने जब विवाह का प्रस्ताव पुत्र के सामने रखा तो पुत्र ने साफ तौर पर यह कह दिया कि –मैं विवाह नहीं करूँगा।

आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए भगवत् ध्यान चिन्तन में मन को लगाऊँगा। इधर माता ने भी शिवराम के विचार का ही समर्थन किया। तब विवाह किसका? माता और पुत्र का विचार एक समान जानकर पिता नरसिंह राव भी पुत्र के विवाह का विचार ही छोड़ दिया।

शिवराम जब चालीस वर्ष के हुए उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता के स्वर्गवास हो जाने के कुछ वर्ष बाद माता विद्यावती भी इस नश्वर शरीर को छोड़कर परलोक को चली गई। माता की म त्यु से शिवराम बहुत दुःखी हुए। माता के उद्देश्य किये जाने वाले क्रिया-कर्म आदि सम्पन्न हो जाने के पश्चात् जिस श्मशान भूमि में माता का दाह संस्कार किया गया था उसी श्मशान भूमि में एक कुटी बनाकर शिवराम अध्यात्म जीवन में निमग्न हरने लगे। छोटे भाई श्रीधर के अश्रुपूर्ण नेत्र, स्वजन तथा बन्धु-बान्धवों के अनुनय विनय भी उन्हें अपने संकल्प से च्युत न कर सका। पैत्रिक धन-सम्पत्ति जो कुछ भी थी अनुज श्रीधर को सब प्रदान करके उन्होंने सांसारिक बन्धनों से अपने को प थक् कर लिया।

साधन कुटी की एक दिशा में चिताभस्म से पूर्ण श्मशान भूमि और दूसरी दिशा में मन्दश्रोतस्विनी एक सरिता बहती थी। जीवन-मरण की इस पटभूमि पर दुर्गेय उस महासत्य की खोज में शिवराम समाहित चित्त होकर ध्यानमग्न हुए। पूरे २० वर्ष तक उस एक ही स्थान पर बैठकर साधना करते रहे। इतने दिनों के त्याग, तप, जप तथा उग्र-साधना का अन्ततः फल भी प्राप्त हुआ। किसी अद श्य शक्ति की प्रेरणा से एक दिन अकस्मात् उस महाश्मशान भूमि की कुटिया में महायोगी स्वामी भगीरथानन्द सरस्वती जी आ उपस्थित हुए। ये ही साधक शिवराम के मार्गदर्शन तथा उनके योगी गुरु थे।

फिर क्या था साधक शिवराम ने भगीरथ स्वामी जी के साथ सदा के लिये उस होलिया ग्राम को परित्याग कर अन्यत्र चले गये। अनेक तीर्थों का पर्यटन करते हुए दोनों ही प्रसिद्ध तीर्थ पुष्करराज उपस्थित हुए। कुछ दिन के बाद पुष्कर तीर्थ में ही शिवराम ने भगीरथ स्वामी जी से संन्यास दीक्षा ली। उनका नामकरण हुआ- स्वामी गणपति सरस्वती। परन्तु तैलंग देश से आये हुए संन्यासी होने के कारण प्रायः लोग उन्हें तैलंग स्वामी के नाम से पुकारते थे और उसी नाम से वे प्रसिद्ध हुए।

संन्यास दीक्षा ग्रहण करने के बाद स्वामी गणपति जी गंभीर साधना में

निमग्न हुए। भगीरथ स्वामी ने तो कुछ काल के बाद पुष्कर तीर्थ में ही शरीर त्याग कर दिया। इस पवित्र क्षेत्र में लगभग १० वर्षों तक साधना करने के बाद तैलंग स्वामी अब भारत के प्रसिद्ध तीर्थों के दर्शन के लिये निकल पड़े, क्योंकि साधना में पूर्णता प्राप्त हो चुकी थी।

तैलंग स्वामी के तीर्थाटन

तैलंग स्वामी तीर्थाटन करते हुए सेतुबन्ध रामेश्वरम् जा पहुंचे। उस समय वहां एक बड़ा मेला लगा हुआ था। एक रोगी ब्राह्मण पुत्र का उस तीर्थ में अचानक म त्यु हो गई। म तक के संस्कार का आयोजन होने लगा। म तक के स्वजनों के विलाप तथा हाहाकार ने वहाँ एक करूण द श्य उपस्थित कर दिया था। प्रशान्त वदन विशालकाय एक संन्यासी दण्ड–कमण्डलु, हाथ में लिये उस स्थान से होकर जा रहे थे। म त व्यक्ति के साथियों के करूण विलाप को सुनकर उनका अन्तर द्रवीभूत हो उठा। करुणा से विगलित होकर उन्होंने कमण्डलु से जल हाथ में लेकर अस्फुट स्वर से मन्त्रोंच्चारण करके म तक के शरीर में उस जल को छिड़का। अभिमन्त्रित जल छिड़कते ही एक अलौकिक घटना घटित हुई। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने देखा कि म त ब्राह्मण की आँखें धीरे–धीरे खोल दी और वह होश में आ गया। उसी समय जनता की भीड़ से बचने के लिये संन्यासी न जाने कहा अद श्य हो गये। मेला में जो सिद्ध महापुरुष आये हुए थे उनसे इस शक्तिमान संन्यासी का परिचय छिपा नहीं रहा। वे जान गये थे कि वह सिद्ध महापुरुष और कोई नहीं योगसिद्ध भगीरथ स्वामी के प्रसिद्ध शिष्य गणपति स्वामी (तैलंग स्वामी) जी महाराज ही थे।

इस प्रकार से कई वर्ष बीत गये स्वामी जी महाराज अनेक तीर्थों का भ्रमण करते हुए एक बार नेपाल राज्य में जा पहुंचे। वहाँ काठमांडू में पशपति नाथ का दर्शन करके वहाँ से चलकर एक घने जंगल में जाकर कुछ काल कठोर साधना की। इसी समय एक दिन नेपाल के 'राणा' ने शिकार खेलते हुए गहन वन में प्रवेश किया। एक बाघ का पंता चला जिस पर बार–बार उन्होंने निशाना साधा, परन्तु हर बार निशाना चूक जाता था। अपने साथी शिकारियों तथा अनुचरों को पीछे छोड़कर 'राणा' ने द्रुतवेग से शिकार का पीछा किया। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने जो कुछ देखा उससे उनके आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने देखा कि पास ही एक योगी ध्यानमग्न अवस्था में व क्ष के नीचे बैठे हुए हैं। भागता हुआ गर्जन करता हुआ वह व्याघ्र योगी के आसन के पास जाकर

जमीन पर लेट गया। योगी ने नेत्र खोले और अपनी शरण में आये व्याघ्र की पीठ को धीरे-धीरे हाथ से सहलाने लगे, मानों वह कोई पालतू बिल्ली हो।

सामने राणा को विस्मय विमूढ़ देखकर योगी ने हाथ के इशारे से अभय प्रदान करते हुए पास में बुलाया। राणा उसके चरणों में मस्तक रख कर प्रणाम किया और उनके पास कांपते हुए खड़े हो गये। योगी उन्हें स्नेह पूर्वक कहने लगे कि- 'देखो बेटा, इससे भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपने मन से हिंसा भाव को हटा दो, यह व्याघ्र तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं करेगा। सब जीव एक ही परमात्मा की स ष्टि है। उनसे प्रेम करो, वे भी तुमसे प्रेम करेंगे। इस बात को अच्छी तरह याद रखना।

विस्मय-विह्वल राणा उसी दिन काठमांडू लौट आये और उन्होंने नेपाल नरेश से उस सिद्ध महायोगी की कहानी कहकर सुनाई। नेपाल नरेश ने बहुत सी भेंट-सामग्री साथ में लेकर उस योगी के दर्शन के लिय वहाँ उपस्थित हुए और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद योगीराज जी की अलौकिक योगशक्ति चमत्कारों की चर्चा जनमानस में फैलने लगी और बहुत बड़ी संख्या में लोग उनके दर्शन के लिये आने लगे। इस लोग समागम से बचने के लिये स्वामी जी ने उस स्थान का परित्याग कर दिया। नेपाल छोड़ने के बाद स्वामी जी कैलाश-मानसरोवर की यात्रा पर चले गये। कैलाश मानसरोवर की यात्रा से लौटते समय मैदानीं इलाके में पहंचने पर उन्होंने एक विचित्र द श्य देखा कि मार्ग में एक स्थान पर ग्रामवासियों की भीड़ लगी हुई है। एक विधवा स्त्री सात साल का एक बालक को गोद में लिये जोर-जोर से रो रही है और विलाप कर रही है। यह बालक ही उसके लिये जीवन का एकमात्र सहारा था। उसके साथ जो लोग थे-ये शवदाह संस्कार की तैयारी कर रहे थे। उस शोकाकुल माता के करूण क्रन्दन से स्वामी जी का ह्रदय द्रवीभूत हो गया। पूछने पर सारी बात मालूम हो गई। स्वामी जी धीरे-धीरे उस म त बालक के पास जा कर म त बालक के ह्रदय का स्पर्श किया जिससे बालक को पुनः जीवन दान मिला। तैलंग स्वामी बालक को जीवनदान देकर वहाँ से चले गये और नर्मदा के तट पर आ गये। इस पुण्यमयी नदी के तट पर पुराण प्रसिद्ध मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम है। उस समय कई विशिष्ट साधु-महात्मा उस पवित्र तपस्थली में तपस्या कर रहे थे। आश्रम के एक कोने में आसन लगाकर तैलंग स्वामी ध्यानमग्न हो गये।

उस मार्कण्डेय आश्रम के पास ही अन्य ओर एक महात्मा बहुत दिनों से

साधना कर रहे थे जो खाकी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। उस अंचल में उनकी योगसिद्धि की ख्याति फैली हुई थी। एक दिन रात्रि के अन्तिम पहर में खाकी बाबा नित्य की तरह नर्मदा जी के तट पर बैठकर साधना में निरत होने जा रहे थे। उसी समय अचानक नर्मदा की जलधारा की ओर उनकी द ष्टि गई। समीप में ही उन्होंने एक अद्‌भुत द श्य देखा। नर्मदा का जलश्रोत एकाएक श्वेत दुग्धधारा में रूपान्तरित होकर बहने लगा। श्रोत के बीच में खड़े होकर तैलंग स्वामी नितान्त श्रद्धा के साथ दुग्ध धारा को अंजुली में भर–भरकर प्रेम से पान कर रहे थे। खाकी बाबा को यह समझते देर न लगी कि नवागत संन्यासी तैलंग स्वामी के योगबल से ही यह आश्चर्यजनक घटना घटित हुई है। सम्भव है उस महायोगी की अमोघ इच्छाशक्ति के प्रभाव से उस जलधारा ने दुग्धधारा के रूप में परिवर्तित हो गया हो। नर्मदा की उस दुग्धधारा को पान करने के लिये खाकी बाबा भी उत्सुक हो उठे। किन्तु उनके स्पर्श करते ही नर्मदा का जल पूर्व की तरह हो गया। विस्मय होकर अपनी साधना में लग गयें

तैलंग स्वामी कुछ वर्ष तक नर्मदा के तट पर तपस्या करने के बाद काशी जाने की इच्छा से प्रयागराज जा पहुंचे। प्रयागराज में भी एक घटना घटी। स्वामी ज़ी एक दिन त्रिवेणी संगम पर बैठे हुए थे। आकाश में काली घटा छायी हुई थी। बीच–बीच में मेघपुंज को चीरकर बिजली चमक जाया करती थी। शीघ्र ही जोरों की वर्षा होने वाली है यह देखकर वहाँ से सब लोग चले गये। यह देखकर रामतारण नामक एक ब्राह्मण स्वामी जी के पास जाकर धीरे से कहा कि –'बाबा!' जोरों की वर्षा होने वाली है। आप क्यों, तट पर बैठकर व्यर्थ कष्ट उठा रहे हैं? पास में किसी स्थान में जा बैठिये।' स्वामी जीने शान्त भाव से ,उत्तर दिया कि – 'मेरे लिये फिक्र न करो, मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी।' स्वामी जी का ध्यान उस पार से सवारी से भरी हुई एक नौका डूबती उतराती हुई इस पार आ रही थी– उसी पर थी। गंगा के बीच पहुंच कर जब वह नौका डूबने लगी तो स्वामी जी यकायक वहाँ से गायब हो गया और वहाँ जाकर डूबती हुई नौका को बचा लिया और उसी नौका पर सवार होकर स्वामीजी भी इस पार आ गये– दुर्घटना टल गयी और यात्रियों के प्राण बच गये।

इसके बाद सन् १७३७ ई० के माघ महीने में तैलंग स्वामी जी शिवपुरी काशी नगरी चले गये और अन्तिम समय तक काशीवास किया। उस समय

कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। एक दिन तड़के असी घाट पर इस विशालकाय नग्न संन्यासी को अचानक देखा गया। उनके आगमन से काशी के जनजीवन में एक प्रकार से तहलका सा मच गया था। उसके बाद तो डेढ़ सौ साल तक काशी में इस महापुरुष के योगैश्वर्यों की एक न एक अद्भुत लीला प्रकट होती रही है। काशी पुरी में वे सचल विश्वनाथ के नाम से विख्यात हुए और इस देश के साधकों में उन्होंने अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त की।

भारत के कोने–कोने से प्रतिवर्ष असंख्य पुण्यकामी तीर्थ यात्री आते थे वे विश्वनाथ, अन्नपूर्णा, दशाश्वमेघ, मणिकार्णिका आदि के दर्शन करने के साथ–साथ इस सिद्धपुरुष महायोगी का भी दर्शन अवश्य करते थे।

काशी आने के समय प्रारम्भ में स्वामी जी असीघाट पर एक बगीचे में रहे, उसके बाद व्रहाँ से लोलार्क कुण्ड पर चले गये। वहाँ एक कुष्ठरोगी ब्रह्मसिंह को जो अजमेर के रहने वाले थे रोगमुक्त कर दिया। उसके बाद स्वामी जी वेदव्यास आश्रम में रहने लगे। एक दिन गंगाघाट पर एक व द्ध ब्राह्मण सीतानाथ बंधोपाध्याय म तप्राय अवस्था में पड़ा हुआ देखा। यक्ष्मारोग से पीड़ित होकर कंकाल मात्र रह गया था। गंगा स्नान के लिये आया था। स्नान के बाद बेहोश होकर गिर पड़ा हुआ था और उसके साथ के लोग उपचार कर रहे थे। तैलंग स्वामी भी गंगास्नान के लिये जा रहे थे। मार्ग में उस म त प्राय ब्राह्मण की अवस्था को देखकर उससे नहीं देखा गया और अंगुली स्पर्श से उसे रोगमुक्त कर दिया।

स्वामी जी अब वेदव्यास आश्रम से हनुमान घाट पर रहने लगे। उस समय एक विचित्र घटना घटित हुई। उस समय उज्जैन के राजा काशी दर्शन के लिये आये हुए थे। व्यास–काशी और रामनगर का दर्शन करके नौका से इस पार लौट रहे थे। सहसा उन्होंने देखा कि एक विशालकाय पुरुष गंगा की धारा में बह रहे है। नौका पर जो लोग सवार थे उनमें से कोई–कोई स्वामी जी को जानते थे। उन्होंने राजा को इस महायोगी का परिचय दिया। कुछ ही समय बाद देखा कि तैलंग स्वामी तैरते हुए उस नौका की ओर बढ़े आ रहे हैं। निकट आने पर सब लोगों ने उन्हें जलधारा से निकालकर नौका पर बिठा दिया।

अपने साथ आये व्यक्तियों के साथ राजबहादुर ने स्वामी जी को प्रणाम किया। मौनी योगीराज जी को चारों ओर लोग कौतूहलवश घेरे बैठे हुए थे। ऐसे समय में ही स्वामी जी एक मौजी बच्चे की तरह आचरण कर बैठे। राजा की

कमर से लटकती हुई तलवार की ओर उनका ध्यान गया। उन्होंने राजा से मांगकर तलवार ले ली और उसे अपने हाथ से घुमाते फिराते रहे। फिर न जाने क्या समझ कर उन्होंने उसे गंगा में फेंक दिया। सब लोग आश्चर्य चकित होकर रह गये कि अब क्या होगा और इधर स्वामी जी एक बालक की तरह हंस रहे थे– मानो यह कोई मजा का खेल हो। राजा को वह तलवार अंग्रेज सरकार से पुरस्कार के रूप में मिली थी। इस मूल्यवान वस्तु को खोकर उनके क्षोभ और क्रोध की सीमा न रही। अन्मत्त संन्यासी को कठोर दण्ड देने की धमकी देने लगे। लोगों ने राजा को समझाने लगे कि गोताखरों के द्वारा तलवार निकाल ली जायेगी इत्यादि।

नौका घात पर पहुंचने के लिये कुछ ही दूर थे। क्रुद्ध राजा किसी प्रकार भी उस संन्यासी को छोड़ देने को तैयार नहीं थे। वे उन्हें दण्ड दे करके ही छोड़ना चाहते थे। अब तक स्वामी जी सब कुछ मौन होकर सुन रहे थे। तब स्वामी जी ने गंगा की धारा से एक साथ दो तलवार निकाल ली और राजा से कहा– ले राजा तुम्हारी तलवार पहचान कर ले लो। यह क्या आश्चर्य! सब लोग आश्चर्य चकित होकर देखते रह गये। राजा को काटो तो खून नहीं। वह अपनी तलवार पहचान न सके; क्योंकि तलवार दोनों हूबहू एक समान थी। स्वामी जी अब मौन भंग करके राजा को तिरस्कार करते हुए कहा – 'अरे मूर्ख राजा! जिस वस्तु को तुम अपना समझ रहे हो उसे पहचानते तक नहीं तो वह वस्तु तुम्हारी कैसे हो सकती है? जो तो नित्य वस्तु (आत्मा) है उसे तो तुम जानते नहीं हो और अनित्य वस्तु के मोह में पड़े हो। म त्यु के बाद निश्चय ही यह तलवार तुम्हारे साथ नहीं जायेगी। जो वस्तु साथ नहीं जायेगी वह वस्तु तुम्हारी कैसे हो सकती है? तब उसके लिये इतना क्षोभ, इतना क्रोध तुम्हारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है? स्वामी जी ने राजा की तलवार को देकर दूसरी तलवार को गंगा में फेंक दिया। राजा को अब अपनी मूढ़ता पर समझ आने लगी और स्वामी जी के चरणों में गिर कर क्षमा–याचना करने लगे। स्वामी जी ने क्षमा कर दी और गंगा में जाकर जलधारा में तैरने लगे।

तैलंग स्वामी जीं की योग सिद्धि

कुछ दिन के पश्चात् ओर एक घटना घटी। तैलंग स्वामी जी नग्न अवस्था में एक दिन गंगा घाट पर बैठे हुए थे। अचानक एक पुलिस कर्मचारी वहां आया और उसने उन्हें थाना चलने के लिए कहा। वह ध्यानावस्थित योगी के

कानों में पुलिस कर्मचारी का एक शब्द भी नहीं सुना। पुलिस कर्मचारी अपने को अपमानित समझ कर संन्यासी को मारने को उतारू हो गया। परन्तु कुछ लोगों के प्रतिवाद करने पर वह रुक गया। इसके बाद वह थाने पर गया और कई सिपाहियों को साथ ले आया और मौनी स्वामी जी को एक डोला पर चढ़ा कर वे मजिस्ट्रेट के सामने हाजिर कर दिया।

साहब ने स्वामी जी को हुक्म दिया कि वे अब नग्न अवस्था में यत्र तत्र न घूमा करें। किन्तु स्वामी जी ने इधर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। वे पूर्व की तरह मौन बने रहे। मजिस्ट्रेट क्रोध से जल उठे। हुक्म दिया कि, अभी इस नग्न संन्यासी को हथकड़ी लगाकर हवालात में ले जाओ।

क्षणभर में वहाँ एक अलौकिक काण्ड हो गया। पहरे से घिरे हुए कमरे से मजिस्ट्रेट और अनेक सिपाही तथा जनसमूह के सामने ही स्वामी जी एकाएक गायब हो गये। अभी–अभी तो वे साहब के सामने खड़े थे, मुहूर्त में कहाँ चले गये? इधर–उधर, बाहर–भीतर सभी जगह उन्हें खोजा गया परन्तु कहीं पर भी उनका पता न चल पाया। पुलिसकर्मी अत्यन्त उद्‌विग्न हो रहे थे। उसी समय सहसा देखा गया कि तैलंग स्वामी अपने स्थान पर चुपचाप खड़े हैं। नग्न संन्यासी के मुखमण्डंल पर बाल सुलभ हंसी विराज रही थी।

मजिस्ट्रेट आश्चर्य चकित हो रहे थे। अब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह संन्यासी साधारण मनुष्य नहीं है। इसी बीच स्वामी जी के कतिपय भक्त एक वकील को साथ लेकर अदालत में उपस्थित हुए। अंग्रेज मजिस्ट्रेट को इन लोगों ने बताया कि यह पहुंचे हुए साधु हैं, समस्त सांसारिक लोभ–मोह, मान–अपमान आदि से परे हैं इनकी द ष्टि में चन्दन और विष्ठा एक समान है। शरीर पर वस्त्र धारण की आवश्यकता नहीं समझते। एक बंगाली डिप्टी मजिस्ट्रेट ने भी इस कथन का समर्थन किया और उसे समझाने लगे।

मजिस्ट्रेट ने कहा– ठीक है यदि इस व्यक्ति को सब वस्तुओं में समज्ञान है, तो इसे यहां मेरे सामने ही मेरा भोजन ग्रहण करना होगा। निषिद्ध मांसयुक्त खाना यह संन्यासी किस प्रकार खाता है, यही मजिस्ट्रेट देखना चाहते थे। तैलंग स्वामी से पूछा गया कि उन्हें साहब का खाना खाने में कोई आपत्ति तो नहीं है? स्वामी जी अब तक मौन थे पर अब मधुर कण्ठ से कहने लगे– 'साहब! तुम्हारा खाना मैं खा सकता हूँ, परन्तु इसके पूर्व मेरा खाना तुमको खाना होगा'

मजिस्ट्रेट राजी हो गये। उन्होंने सोचा, वह कौन सी बात है? हिन्दू संन्यासी तो प्रधानतः शाकाहारी या फलाहारी होते हैं। उनके ग्रहण करने में मुझे क्या आपत्ति है? किन्तु एक संन्यासी को तो माँस भक्षण करने के लिये बाध्य किया जा सकेगा। जनसमूह के बीच में ही स्वामी जी ने एक अद्भुत काण्ड कर डाला। अपने हाथ के ऊपर मलत्याग करके साहब की ओर हाथ बढ़ाते हुए उन्होंने कहा– 'साहब! आज का भोजन मेरा यही है। आईये साथ दीजिये।' साहब को यह देखते ही उनकी अक्ल गुम हो गई और आश्चर्य चकित होकर आँखें फाड़कर देखते ही रह गये।

ब्रह्मज्ञानी महायोगी चन्दन और विष्ठा में समबुद्धि रखने वाले थे वे। इस विचित्र भोजन को ज्यों ही मुख की ओर ले जाते त्यों ही सुन्दर स्वादिष्ट भोजन बन जाते। इस प्रकार से उस आश्चर्यपूर्ण भोजन को वे निर्विकार चित्त से निगल गये। असाधारण योगशक्ति के प्रभाव से विष्ठा जैसी निक ष्ट वस्तु भी स्वादिष्ट भोजन के रूप में परिणत हो गई थी। आसपास में सर्वत्र उसकी सुगन्धी फैल गई थी। साहब को अब समझ में आ गयी कि इस संन्यासी की तपःशक्ति अपरिमेय है और इसके कार्यकलाप साधारण मनुष्यों से सर्वथा विलक्षण है। तुरन्त उन्होंने आदेश दे दिया कि – तैलंग स्वामी नग्न अवस्था में जहां पर भी विचरण कर सकते हैं इसके लिये उन्हें कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी।

इसके बाद शीघ्र ही जिला मजिस्ट्रेट की बदली दूसरी जगह हो गई। उनके स्थान पर जो नया साहब आया वह मिजाज का बहुत कड़ा था। स्वामी जी एक दिन, जैसे उनकी आदत थी, दशाश्वमेघ–घाट पर बहुत से लोगों के बीच नग्न घूम रहे थे। इस द श्य को देखकर नया मजिस्ट्रेट आग बबूला हो उठा। फौरन स्वामी जी को पकड़ कर हवालात में बन्द कर दिया। दूसरे दिन वह उन्हें देखने गया। उस समय स्वामी जी बन्दताला कमरे के बाहर टहल रहे थे। कमरे की अच्छी तरह परीक्षा करने पर भी समझने में नहीं आया कि स्वामी जी किधर से बाहर निकल आये। कमरा खोल कर देखा तो भीतर जलमग्न था। स्वामी जी से पूछने पर उन्होंने जवाब में कहा कि– 'रात में मुझे लघुशंका लगी। देखा कि कमरा बन्द था। उस समय कमरे से बाहर निकलने की इच्छा नहीं हुई, इसलिये वहीं मूत्र त्याग कर दिया। फिर रात के अन्तिम पहर में कमरा मुझे अच्छा नहीं लगा, इसलिये बाहर निकल कर टहल रहा हूँ। मजिस्ट्रेट क्रोध से जल उठा, उसने स्वामी जी को अन्दर बन्द कर दोहरा ताला लगा दिया। कुछ देर के

बाद उसने कोर्ट में अपने इजलास के कमरे में स्वामी जी को खड़ा पाया। मजिस्ट्रेट की बुद्धि विफल हो गई। विवश होकर उसने भी तैलंग स्वामी को नग्न–अवस्था में घूमने की स्वतंन्त्रता दे दी गई।

स्वामी जी का विराट आध्यात्मिक जीवन योग और तंत्र की साधना के समन्वय से गठित हुआ था। वर्षों से त्याग–तप और साधना का ही यह परिणाम था कि–जो योग विभूतियों से उनका जीवन परिपूर्ण था।

एक बार दक्षिणेश्वर के रामक ष्ण परमहंसदेव काशी विश्वनाथ के दर्शन के लिये वहाँ आये। परमहंस देव तैलंग स्वामी के दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने शिष्यों से कहा– 'देखो, साक्षात् विश्वनाथ उनके शरीर का आश्रय ग्रहण कर प्रकट हो रहे हैं। उन्हें शरीर का कोई ज्ञान नहीं है। धूप में बालू इस तरह तपी हुई है कि कोई उस पर पांव तक नहीं रख सकता, उसी बालू में स्वामी जी मजे से सोये हुए हैं।' रामक ष्ण परमहंस तैलंग स्वामी जी से बड़े प्रेम से मिले– वार्तालाप हुई और दोनों साधना की स्थिति से परिचित हो गये थे। परमहंस देव ने तैलंग स्वामी जी के लिये आधा मन खीर तैयार करायी और अपने हाथ से खिलाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। स्वामी जी दीर्घकाल तक बिना भोजन के भी रह जाते थे और भोजन के समय परिमाणं का अन्दाज़ भी नहीं रखते थे। श्री रामक ष्ण परमहंस जब तक काशी में रहे प्रायः तैलंग स्वामी से प्रेम से मिलते रहे।

तैलंग स्वामी जीवन के अन्तिम दिनों में पंचगंगा घाट पर मंगल भट्ट के आश्रम में रहने लगे थे। कईं वर्षों तक वे इस स्थान पर रहे। किन्तु कोई मठ, आश्रम या कोई अपना प थक सम्प्रदाय स्थापित करने की इच्छा उनके मन में कभी नहीं हुई। केवल गंगागर्भ ही नहीं किन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म सागर में स्वेच्छा विहारी एक मीन की तरह स्व–स्वन्द विहार करते रहे और निःसंगता के साथ अध्यात्मलीला का उद्यापन करते हुए ब्रह्मलीन हुए।

उस महायोगी को ज्ञात हो गया कि तिरोधान का निर्दिष्ट मुहूर्त भी समीप है। महायोगी के लौकिक जीवन पर अब यवनिकापात होने वाला है। कुछ दिन पूर्व उन्होंने भक्तगण को उनकी प्रार्थना के अनुसार साधंना के सम्बन्ध में बहुत उपदेश प्रदान किये। फिर उनके निर्देशानुसार चन्दन की लकड़ी का एक बड़ा बक्सा तैयार करवाया गया। शव को उसमें रखकर गंगा गर्भ में निर्दिष्ट स्थान पर निमज्जित कर दिया जायेगा। यह आदेश उन्होंने शरीर त्याग करने से

पहले ही कर दिये थे।

तकरीबन १५० डेढ़ सौ साल के बाद शुक्लपक्ष एकादशी पौषमास के पुण्यक्षण में ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से उस महायोगी की अमर आत्मा ने शरीर त्याग कर ब्रह्मलीन हुए। चन्दन की लकड़ी से बने सन्दूक में उनके नश्वर शरीर को रखकर पंचगंगा घाट पर एक नौका में रखा गया। तब तक उनके तिरोधान का समाचार सम्पूर्ण काशीपुरी में फैल चुका था। सर्वजन पूजित महायोगिराज की गंगा गर्भ में समाधि के इस अपूर्व द श्य को देखने के लिये काशी के निवासी उमड़ पड़े। अस्सीघाट से वरूणा तक तैलंग स्वामी के पार्थिव शरीर को घुमाया गया और फिर निर्दिष्ट गंगा गर्भ में निमज्जित कर दिया गया। शिवपुरी काशीधाम में शिवतुल्य उस महायोगी ने वर्षों तक योग सिद्धि का प्रदर्शन करके आज गँगागर्भ में समा गये। हजारों मनुष्यों के नेत्रों से अश्रुधारा बहती रही मानो उनके लिये आज से योग विभूति के प्रदर्शन समाप्त प्रायः अनुभव हुआ। ऐसे थे काशी निवासी महायोगी तैलंग स्वामी। ○

—विज्ञानानन्द

वे महापुरुष धन्य है

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसितां ज्योतिः परं ध्यायता
मानन्दाश्रुकणान् पिबन्ति शकुनानिङ्गमड्. केशयाः।
अस्माकं तु मनोरथो पर चितप्रासाद वापी तटे
क्रीड़ाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते।। वैराग्य शतक. ६६।।

अर्थ- जो पुरुष पर्वत की कन्दराओं में रहते हैं, और जो परब्रह्म ज्योति का ध्यान करते हैं, जिनके आनन्दाश्रुओं के जल को पक्षीगण, निःशंक गोद में बैठकर पीते हैं वे धन्य हैं। परन्तु हमारी तो अवस्था केवल मनोरथ ही के मन्दिर में बनी बाबड़ी के तट पर जो क्रीड़ा कानन है, उसमें लीला करते ही क्षीण होती है। तात्पर्य यह है कि नाना प्रकार की मिथ्या कल्पनाओं में ही आयु व्यतीत हो जाती है, वास्तव में कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता है।

(५) स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस

अठारहवीं शताब्दी में ओर एक महान् सिद्धयोगी महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ जो योगसिद्धि आदि के प्रदर्शन में अत्यन्त माहिर थे। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव के नाम से वे प्रसिद्ध हुए थे। उन्हें लोग 'गन्धबाबा' के नाम से भी जानते थे, क्योंकि उनके शरीर से हमेशा पद्मगन्ध निकला करती थी।

पश्चिम बंगाल के वर्धमान नगर से १४ मील उत्तर पूर्व में भण्डार डिही के पास बन्दूल नामक एक छोटा सा गाँव है। उसी गाँव में अखिल चन्द्र चट्टोपाध्याय जी अपनी धर्मपत्नी राजराजेश्वरी देवी के साथ जीवन यापन कर रहे थे। सन् १८५३ ई० को बसन्त ऋतु में राजराजेश्वरी देवी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया।

इस पुत्र रत्न का स्वागत और अभिनन्दन प्रक ति ने भी समारोह पूर्वक किया। उस समय नूतन प्रभा, नव उल्लास, नवोन्मेष तथा अभिनव उत्साह सब कुछ अपूर्व और दर्शनीय था।

सरिता अपनी मन्द–मन्थर गति से लहरों के साथ खेलने लगीं, झरनों की कल–कल ध्वनि में संगीत प्रवाहित होने लगा, सरवरों में कमल खिल उठे, शीतल सुगन्ध पवन बहने लगा। लताओं से आलिंगित तरुवरों ने किसी अनजाने हर्ष के आवेश में झूम उठे। बन्दूल ग्राम अपने को धन्य–क तार्थ समझने लगा। लगता था प्रक ति जैसे इस शिशु के उज्ज्वल भविष्य से पहले से ही परिचित हो और इस पुण्यात्मा के अवतरण पर हर्ष और आनन्द मना रहे हैं।

बालक जन्म से ही अपने अलौकिक रूप तथा गुणों द्वारा माता–पिता तथा सेगे–सम्बन्धियों के मन प्राण को आकर्षित तथा आह्लादित करने लगा। सहसा देखने वाले को प्रतीत होता था कि यह बालक मनुष्यलोक से परे किसी अन्तर्लोक में से खोया हुआ हो। उसकी निर्निमेष द ष्टि को देखने से जान पड़ता था कि जैसे वह संस्कारों के मोहावरण को भेद करके किसी दूरस्थ शान्तिमुय आनन्दमय राज्य की ओर देख रहा हो। सामान्य बालक की भांति वह न रोता और न व्याकुलता ही प्रकट करता। उसके भले स्वभाव और विस्मरणशील प्रक ति को देख माता–पिता ने उसका नाम रखा 'भोलानाथ'।

भोलानाथ की आयु जब केवल छह मास की थी तभी उसके पिता अखिल चन्द्र का देहान्त हो गया। फिर उसके लालन–पालन का भार उसकी माता

राजराजेश्वरी देवी और चाचा 'चन्द्रनाथ' के ऊपर आ पड़ा। चन्द्रनाथ अपने पुत्र की भांति भोलानाथ पर अपार स्नेह रखते थे और लालन–पालन में किसी प्रकार की त्रुटि न आने देते थे। बालक भोलानाथ जब चौदह–पन्द्रह वर्ष के थे, तभी एक पागल कुत्ते ने उन्हें काट लिया। अपनी म त्यु निश्चित समझ कर उन्होंने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया और हुगली के निकट गंगातट पर जा पहुंचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि एक महात्मा गंगा में स्नान कर रहा है। गंगा स्नान करने के पश्चात् गंगा तट पर खड़े बालक भोलानाथ से पूछा– क्यों भाई तुम गंगा में डूबने के लिये आये हो? बालक भोलानाथ को महात्मा की बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह साधु कैसे जाना कि मैं गंगा में डूब मरने के लिये यहाँ आया हूँ, निश्चय ही यह कोई पहुंचे हुए महात्मा होगा। तब उसने अपने सारा कष्ट उन्हें कह सुनाया और कहा कि– 'आजीवन कष्ट भोगने से मैं गंगा में डूब कर प्राणान्त करना उचित समझता हूँ।' महात्मा ने उनके सिर पर हाथ रख दिया, जिसके स्पर्श से उनका सारा शरीर शीतल हो गया। उसके बाद महात्मा बोले कि– 'घर जाओ, पेशाब होगा, उसके बाद पेशाब के साथ ही तुम्हारे शरीर से सारा विष बहकर बाहर निकल जायेगा और तुम स्वस्थ हो जाओगे। वह महात्मा थे तिब्बत के ज्ञानगंज में रहने वाले एक सिद्धयोगी स्वामी नीमानन्द जी।

भोलानाथ को लगा कि वास्तव में ही वह कोई सिद्धमहापुरुष है, इसलिये भोलानाथ ने कहा कि– 'आपने लौकिक जीवन की रक्षा तो कर ली है, परन्तु परमार्थ का रास्ता भी बताईये।' महात्मा ने कहा– 'मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। फिर भी यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा हो, तो मैं तुम्हें गुरु के स्थान तक पहुंचा सकता हूँ। परन्तु इसके लिये तुम्हे अपनी माता से आज्ञा लेनी होगी अन्यथा नहीं।' उन्होंने घर जाकर अपनी माँ को सारी घटना की बात बताई। जीवन रक्षा का समाचार सुनकर उसकी माँ अत्यन्त प्रसन्न हुई।

बाद में जब वहीं महात्मा आये तो भोलानाथ को साथ में लेकर पहले तो अष्टभुजा[1] मन्दिर के पास ले गये, जहाँ पर वे एक सप्ताह तक निर्जन स्थान

---

१. श्री नन्दलाल गुप्त द्वारा लिखित 'स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव जीवन दर्शन' में लिखा है कि- भोलानाथ और हरिपद इन दोनों की आँखों पर पत्ती बांधकर आकाश मार्ग से पहले अष्टभुजी मन्दिर विन्ध्याचल पर्वत पर स्थित देवी मन्दिर के पास ले गये। उसके बाद हिमालय के तिब्बत में स्थित ज्ञानगंज में आकाशमार्ग से ले गये थे।

में रहे। उसके बाद फिर स्वामी नीमानन्द जी ने उनको तिब्बत में स्थित पहले भ गुराम के ज्ञानगंज आश्रम में ले आये। परमहंस की आयु उस समय लगभग डेढ़ सौ वर्ष की थी। उनकी आज्ञा से स्वामी नीमानन्द ने उन्हें राजेश्वरी मठ ले गये, जहाँ महात्मा नामक एक स्वामी जी ने उन्हें दीक्षा दी।

भोलानाथ वहाँ बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए साधन सम्बन्ध ी शिक्षा प्राप्त करते रहे। उसके बाद संन्यासी बने और वही विशुद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। संन्यास के बाद कुछ काल तक परिव्राजक रूप में तीर्थाटन करते रहे। अध्ययन काल समाप्त हो जाने के बाद उनकी परीक्षा हुई। इससे पहले उनका जीवन साधनामय अध्ययन, गुरुजनों से अध्यात्म शिक्षण तथा कष्टमय साध ाना चलती रही है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर गुरु ने उन्हें जगत् में धर्म का प्रचार करने का आदेश दिया साथ ही पूर्णता लाभ के लिये विवाह करने का भी आदेश दिया।

विशुद्धानन्द जी अपनी जन्मभूमि वापस लौट आये और एक चिकित्सक के रूप में ग हस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। पत्नी के निधन होने के बाद ही वे परमहंस व त्ति मे आये। स्वामी जी के शरीर में सैंकड़ों स्फटिक गोलक थे और मस्तक में शालिग्राम शिला थी, जिसे वे कभी–कभी शरीर से निकाल कर दिखाया करते थे। पातंजल योगदर्शन के विभूतिपाद में जितनी विभूतियों का उल्लेख है, उससे भी कहीं अधिक सिद्धियाँ उनके पास थी।

परमहंस दशा में वे काशी में आकर 'विशुद्धानन्द कानन' नामक एक आश्रम बनाकर स्थायी रूप में रहने लगे और अनेकानेक योग सिद्धियों का प्रदर्शन भी करते रहे। परमहंस जी सूर्य विज्ञान के विशेषज्ञ थे। एक दिन उनके दर्शन के लिये महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज जी ने स्वामी जी से पूछा– 'आपको यह विज्ञान कहां से मिला? हमने तो कहीं भी इस विज्ञान का नाम तक नहीं सुना?' उन्होंने हंसकर यह कहा– 'तुम लोग बच्चे हो, तुम लोगों का ज्ञान ही कितना है? यह विज्ञान भारत की ही वस्तु है,

उच्चकोटि के ऋषिगण इसको जानते थे और उपर्युक्त क्षेत्र में इसका प्रयोग भी किया करते थे। अब भी इस विज्ञान के पारदर्शी आचार्य अवश्य ही विद्यमान है। वे हिमालय और तिब्बत में गुप्तरूप से रहते हैं मैंने स्वयं तिब्बत के उपान्तभाग में ज्ञानगंज नामक बड़े भारी योगाश्रम में रहकर एक योगी और एक विज्ञानविद् महापुरुष से दीर्घकाल तक कठोर साधना करके इस विद्या को और ऐसी ही ओर भी अनेक लुप्तविद्याओं को सीखा है। यह अत्यन्त ही जटिल और दुर्गम विषय है। इसका दायित्व भी सर्वाधिक है। इसीलिये इसके आचार्यगण सहसा किसी को यह विषय नहीं सिखाते हैं'।

योग और विज्ञान दोनों ही अलौकिक है, इसमें सन्देह नहीं है और स ष्टि आदि सब प्रकार के ऐश्वरिक कार्य दोनों ही प्रणालियों से सम्पन्न हो सकते हैं।

इसलिये बाह्य द ष्टि से दोनों में पार्थक्य का आविष्कार करना सहज नहीं है। जो लोग विज्ञान का तत्व नहीं जानते, वे विज्ञान के सभी कार्यों को योगशक्ति के कार्य समझेंगे, किन्तु वास्तव में दोनों प्रणालियों में मौलिक भेद है। उच्च अधिकार सम्पन्न हुए बिना यह भेद नहीं समझा जा सकता।

एक बार क्वीन्स कालेज के भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर अभय सान्याल ने परमहंस विशुद्धानन्द के सूर्य विज्ञान के विषय में सुना। उन्होंने कहा कि विशुद्धानन्द जी उन व्यक्तियों को ही चमत्कार दिखाकर चमत्क त कर सकते हैं जो विज्ञान नहीं जानते। सूर्य रश्मियों से किसी भी प्रकार की ठोंस वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सान्याल जी के इस कथन से स्वामी जी के शिष्य कविराज जी को बड़ा दुःख हुआ। वे सान्याल जी को अपने गुरु के पास ले गये। परिचय आदि कराने के बाद उन्होंने बाबा से कहा– यदि आप मेरी इप्सित वस्तु मेरे सामने सूर्य रश्मि से उत्पन्न कर सके तो हम आपके सूर्यविज्ञान सिद्धान्त की वास्तविकता स्वीकार कर सकते हैं केवल कथनी मात्र से नहीं। बाबा ने पूछा– 'क्या देखना चाहते हो?' सान्याल जी ने एक 'लाल कणाश्म' पत्थर देखने की इच्छा प्रकट की।

स्वामी जी ने रुई का एक टुकड़ा मंगाया और उस पर लेंस का प्रकाश डाला। कुछ देर बाद वह लाल ग्रेनाइट पत्थर के रूप में परिवर्तित हो गया। इस पर प्रो०. सान्याल जी ने आपत्ति प्रकट की कि यह तो योग का चमत्कार है। कुछ देर में अद श्य हो जायेगा। स्वामी जी वह पत्थर उठाकर सान्याल जी को देते हए कहा कि 'आप इसे जीवन पर्यन्त अपने पास रखिये इसमें रंच मात्र भी परिवर्तन नहीं आयेगा।

इसके बाद स्वामी जी ने प्रोफेसर सान्याल जी के सामने ही एक फूल उठाकर उसकी प्रत्येक पंखुड़ी से एक–एक नवीन पुष्प उत्पन्न कर दिया और प्रो० सान्याल जी से कहा– 'आप लोग भौतिक विज्ञान में बाहरी ढांचे को लेकर बहुमूल्य उपकंरणों की सहायता से कुछ तथ्यों को खोजते हैं और अपनी सफलता पर प्रसन्न व्यक्त करते हो, परन्तु यह नहीं जानते कि यह प्रक ति स्वयं एक विज्ञान है। इसमें तत्वान्वेषण प्रक्रिया के लिये बाह्य उपादानों की आवश्यकता नहीं है। नियति अपने रहस्य अधिकारी विद्वानों के समक्ष स्वतः खोल दिया करती है।

कुछ दिन के पश्चात् ओर एक घटना घटी कि एक बार मधुसूदन ओझा काशी आये। जब वे डॉ० गोपीनाथ कविराज से वार्तालाप कर रहे थे तो प्रसंगवश कविराज जी ने उन्हें बताया कि उनके गुरु स्वामी विशुद्धानन्द सूर्य की रश्मियों से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करते हैं। ओझा जी सूर्य की रश्चिमयों से इस प्रकार की वस्तुओं के निर्माण बहुत कुछ पढ़ और सुन चुके थे, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में देखने का सौभाग्य उन्हें अब तक प्राप्त नहीं हुआ था। स्वामी

विशुद्धानन्द जी भी उन दिनों काशी में ही विराज रहे थे। अतः ओझा जी ने इसे प्रत्यक्ष देखने की प्रबल इच्छा हुई। तब कविराज जी उन्हें अपने साथ गुरुदेव के पास ले गये। उस समय योगीराज जी अपने शिष्यों को सूर्य रश्मियों से वस्तु स ष्टि की प्रक्रिया समझा रहे थे। मधुसूदन की प्रार्थना पर स्वामी जी ने सहर्ष कुछ वस्तुएँ उत्पन्न की। कपूर, जाफरान आदि उन्होंने लेंस की सहायता से उत्पन्न कर ओझा जी को दिये। ओझा जी इस अलौकिक स ष्टि–प्रक्रिया को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

काशी के मायावी-

डॉ० पाल ब्रन्टन एक विदेशी पत्रकार थे जिन्होंने तिब्बत, भारत, मिश्र आदि देशों की यात्रा कर वहाँ के अलौकिक रहस्यों का अध्ययन किया और अनेक ग्रन्थों की रचना की। उनकी पुस्तक 'ए सर्च इन सिक्रेट इंडिया' से उन्हीं के शब्दों में पढ़िये। दूसरे दिन मैं काशी की सैर करने पैदल ही निकला। उसकी टेढ़ी तंग गलियों की खाक छानने में मेरा एक प्रयोजन अवश्य था। मेरी जेब में एक योगी का पता– ठिकाना था जो उनके एक शिष्य ने बम्बई में मुलाकात होने पर मुझे दिया था। आखिर मैं एक राजपथ पर एक बड़े मकान के फाटक पर पहुंच गया जिसके एक स्तम्भ में छोटे पत्थर पर लिखा था 'विशुद्धानन्द कानन आश्रम'। मैंने भीतर प्रवेश किया एक बड़े कमरे में अच्छी पोशाक पहने हुए भारतीय व्यक्ति अर्धगोलाकार में नीचे फर्स पर बैठे हुए थे तथा सामने एक सफेद पर भूरी दाढ़ी वाले एक महात्मा बैठे थे। उनका आदरणीय तेजोमय चेहरा और उच्च आसन को देखते ही मैंने जान लिया कि जिनकी मैं खोज कर रहा था वे ये ही हैं। मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

मैंने उनको बताया कि मैं एक अंग्रेजी पत्रकार भारत का भ्रमण करने आया हूँ, क्योंकि मुझे भारतीय दर्शन शास्त्र और योग मार्गों के अध्ययन करने की बड़ी लालसा है। मैंने इनको सूचित किया कि मेरी उनके एक शिष्य के साथ भेंट हुई थी और उस शिष्य ने ही मुझे उनका पता दिया है।

कुछ देर के बाद उन्होंने अपने चेले से बंगला भाषा में कहकर उसके द्वारा अंग्रेजी में मुझको कहलाया कि– बिना गवर्णमेन्ट कॉलेज के प्रिंसिपल गोपीनाथ कविराज जी को लाये बातचीत सम्भव नहीं। कविराज जी अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता हैं, साथ ही वे स्वामी विशुद्धानन्द जी के पुराने शिष्य भी है। अतः वे ही द्विभाषी बनने की भूमिका ठीक से निभा सकेंगे। कल उनको साथ ले आईये। चार बजे मैं आप लोगों की प्रतिक्षा करूँगा।'

'मैं कालेज पहुंचा। लेकिन वहाँ पर कविराज जी नहीं थे। उनके घर का पता लगाने में आधा घण्टा ओर लगा। आखिर को एक पुराने दो मंजिलें मकान में वे मुझको मिल गये। पण्डित जी दूसरी मंजिल पर एक कमरे में फर्स पर बैठे थे । चारों और ढेर–ढेर किताबें पड़ी हुई थी तथा कागज, स्याही आदि लेखन

सामग्री भी पास ही रखी हुई थी। चेहरे से उनकी संस्क ति और सभ्यता टपक पड़ती थी। मैंने अपने आगमन का उद्देश्य उन पर प्रकट कर दिया। पहले तो वे कुछ हिचकिचाये, पर फिर कुछ सोचकर वे दूसरे दिन मेरे साथ चलने के लिये राजी हो गये और बात पक्की करके मैं उनसे विदा हुआ।

दूसरे दिन चार बजते बजते मैं कविराज जी को साथ लेकर स्वामी विशुद्धानन्द जी के पास जा पहुँचा। उस बड़े कमरे में पाँव रखते ही हमने आचार्य की अभ्यर्थना की। वहाँ पर उस समय छह शिष्य मौजूद थे। स्वामी जी ने मुझे अपने पास बुलाया और मैं उनकी गद्दी के निकट जा कर बैठ गया।

उनका सबसे पहला प्रश्न यह था– 'मेरी कोई करामात देखना चाहते हो?'

'जी हाँ, आपकी बड़ी क पा होगी– मैंने जवाब दिया।

तब कविराज जी ने अंग्रेजी में कहा– 'अपना रूमाल दीजिये, रेशमी हो तो अच्छा हो।' सौभाग्य से मेरी जेब में रेशमी रूमाल था। उन्होंने एक छोटा आतशी–शीशा (Magnifying Glass) निकाला और कहा– 'मैं रूमाल पर सूर्य की किरणों को केन्द्रियभूत करना चाहता हूँ पर सूर्य की इस समय की स्थिति और कमरे की छाया के कारण यह काम अच्छी तरह नहीं किया जा सकेगा। कोई आंगन में जाकर शीशे के द्वारा सूर्य की किरणों को भीतर पहुंचा सके तो सारी कठिनाई दूर होगी। आप जो चाहे वही सुगन्धि पैदा की जा सकती है। कहिये, आपको कौन सी सुगन्धि चाहिये?

'मैंने पूछा क्या आप बेले की सुगन्धि पैदा कर सकते हैं?'

आचार्य ने अपने बांये हाथ से रूमाल लिया और उसके ऊपर शीशा रखा। दो क्षण तक सूर्य की किरणें रेशम के रूमाल पर थिरक उठी। उन्होंने शीशा नीचे रख रूमाल मुझे लौटा दिया, वह बेले की भीनी महक से भरा था।

मैंने रूमाल को बड़े गौर से देखा परखा। कहीं भी नमी का नाम तक न था। कोई इत्र छिड़का गया हो सो भी बात नहीं थी। मैं हैरान था और स्वामी जी की ओर अधखुली द ष्टि से सन्देह के साथ ताकने लगा। वे फिर से यह करामात दिखाने को तैयार थे। अबकी बार मैंने गुलाब की खुशबू चाही। विशुद्धानन्द जी प्रयोग करने लगे तो मैं उनकी ओर गौर से ताकने लगा। उनके हाथों और पांवों का हिलना–डुलना, उनके चारों ओर जो कोई चीज धरी थी, एकभी बात मेरी नजरों से नहीं बची। उनके बलिष्ठ बाहु और बेदाग पहनावे की बड़े गौर से मैंने परीक्षा ली लेकिन शंका के लिये कहीं जगह न थी। पहले के समान ही उन्होंने प्रयोग करके गुलाब के मधुर सौरंभ से रूमाल का दूसरा किनारा परिमलित कर दिया।

तीसरी बार मैंने बनफशे के फूल की सुगन्धि चाही। अबकी बार भी वे अपने प्रयोग में सफल हुए।

विशुद्धानन्द जी अपनी सफलता पर फूले नहीं। इन सारी विभूतियों को वे बिल्कुल मामूली ही समझते हैं। उनका गम्भीर मुखमण्डल भावनाओं के उतार चढ़ाव से कुछ भी प्रभावित नहीं होता।

वे एक बारगी बोल उठे– 'अब मैं एक नये फूल की सुगन्ध बनाता हूँ जो फूल केवल तिब्बत में ही मिलता है।' उन्होंने रूमाल के कोने पर, जो अब तक छुआ नहीं गया था, सूर्यरश्मि को केन्द्रीभूत किया। एक अजीब परिमल आने लगा जो मेरे लिये एकदम नया था। अतः कुछ चकित हो मैंने रूमाल जेब में रख लिया।

इसके बाद उन्होंने एक छोटी गोरेया पक्षी की गर्दन मरोड़ कर मरवा डाली। फिर योगीराज जी ने शीश निकाला और सूर्य की किरणों को चिड़िया की आँखों पर केन्द्रित कर दिया और चिड़िया पुनः जीवित हो उठी और उड़कर एक व क्ष के डाल पर बैठ गयी।

इस प्रकार से कई करामात दिखला कर डॉ० पालब्रन्टन को आश्चर्य चकित कर दिया था। उन्होंने 'गुप्त भारत की खोज' नामक पुस्तक में ऐसी बहुत सारी सिद्धियों की बात विस्तार पूर्वक वर्णन किया हैं

इस तरह न जाने उस योगी ने कितने प्रकार की ऋद्धि–सिद्धियों को अपने शिष्य–भक्तों के समक्ष प्रदर्शित किये कोई हिसाब नहीं है। वे सिद्ध कोटि में आ गये थे और सिद्ध योगी पुरुष थे। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस जी ११ जुलाई १६३७ ई० में कलकत्ते महानगर में महासमाधि ली अर्थात् ब्रह्मलीन हुए। ○

–विज्ञानानन्द

We want to lead mankind to the place
where there is neither the Vedas, nor
the Bible, nor the Koran; yet this has
to be done by harmonising the Vedas,
the Bible and the Koran.
Mankind ought tio be taught that religions
are but the varied expressions of
THE RELIGION, which is Oneness,
so that each may choose the path
that suits him best.

–Swami Vivekananda

(६) महर्षि दयानन्द सरस्वती

१८वीं सदी के अन्तिम चरण में ओर एक महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ जिसका नाम था स्वामी दयानन्द सरस्वती। वे वेद–शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् और परमहंस संन्यासी थे। इसलिये मैडम ब्लैवस्तिकी ने उनके बारे में लिखा है कि– शंकराचार्य के बाद भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी जी से बड़ा संस्क तज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो।' केवल यही नहीं किन्तु वेदों पर किये गये महत्वपूर्ण कार्यों को देखकर बाद में उन्हें महर्षिपद से भी विभूषित किया गया जो उचित हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के कई जीवन व तान्त उपलब्ध है, परन्तु उनमें ग्रन्थ लेखक के विचार ही प्रमुखतया मिलते हैं जो अतिरंजित वर्णन देता है। पर हम जब स्वामी जी के स्व–रचित जीवन व तान्त को पढ़ते हैं, तो बिल्कुल आडम्बर शून्य, सत्य और यथार्थ प्रतीत होता है। अतः स्व–रचित जीवन व तान्त ही यथार्थ सत्य और प्रामाणिक माना जाता है। इसलिये इस संदर्भ में हम स्वामी जी के द्वारा लिखित जीवन व तान्त[1] के आधार पर ही स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन के विषय में एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

स्वामी जी ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखते हैं कि– 'मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती संक्षेप से अपना जन्म चरित्र लिखता हूँ।' पढ़िये उन्हीं के शब्दों में–

'हमसे बहुत लोग पूछते हैं, आप ब्राह्मण हैं हम कैसे जाने? आप अपने इष्टमित्र भाई–बन्धु के पत्र मंगा देवें अथवा किसी की पहचान बतावें। ऐसा कहते हैं। इसलिये अपना व तान्त कहता हूँ। गुजरात देश में दूसरों की अपेक्षा मोह विशेष है। यदि मैं इष्ट मित्र, भाई–बन्धु की पहचान दूं या पत्र व्यवहार करूँ तो मुझे बड़ी उपाधि होगी। जिन उपाधियों से मैं छूट गया हूँ वही उपाधियाँ मेरे पीछे लग पड़ेगी। यही कारण है कि पत्रादि मंगाने का यत्न नहीं करता। पू. व्या.

---

१. *पुस्तक का नाम* 'ऋषि दयानन्द स्वरचित जन्म चरित्र'
ग्रन्थ का सम्पादक- पं० भगवद्दत्त।
प्रकाशक- रामलाल कपूर ट्रस्ट- अम तसर। चतुर्थ संस्करण।

प्रथम दिन से ही मैंने लोगों को अपने पिता का नाम और अपने कुल स्थान बताना अस्वीकार किया था। इसका यही कारण है कि मेरा कर्त्तव्य मुझे इस बात की आज्ञा नहीं देता। यदि मेरे कोई सम्बन्धी मेरे इस व त्त से परिचय पा लेता है तो अवश्य मेरे को ढूँढने का प्रयत्न करता[1]। इस प्रकार उनसे दो चार होने पर मेरा उनके साथ घर जाना आवश्यक हो जाता। सुतरां एक बार पुनः मुझे धन हाथ में लेने पड़ता अर्थात् (मैं) ग हस्थ हो जाता। उनकी सेवा शुश्रुषा भी मुझे अवश्य करनी पड़ती। और इस प्रकार से उनके मोह में पड़कर सर्व– सुधार का यह उत्तम कार्य जिसके लिये मैंने जीवन अर्पण किया है जो मेरा यथार्थ उद्देश्य है, जिसके अर्थ स्वजीवन बलिदान करने की किंचित् भी सोच नहीं की है और अपनी आयु को बिना मूल्य (व्यर्थ) जाना और जिसके अर्थ मैंने, सब कुछ स्वाहा करना अपना कर्त्तव्य समझा अर्थात् देश का सुधार और धर्म का प्रचार (अन्यथा) वह देश पूर्ववत् अन्धकार में पड़ा (ही) रह जाता।

संवत् १८८१ के वर्ष में दक्षिण गुजरात प्रान्त, देश काठियाबाड़ के मजोकठा देश, मोर्वी का राज्य, औदीच्य ब्राह्मण के घर मेरा जन्म हुआ था। यद्यपि औदीच्य ब्राह्मण सामवेदी है परन्तु मैंने बड़ी कठिनता से शुक्लयजुर्वेद पढ़ा था।

(१८८५) मैंने पाँचवे वर्ष में देवनागरी अक्षर पढ़ने का आरम्भ किया था। और मुझको कुल की रीति की शिक्षा भी माता–पिता आदि ने किया करते थे। बहुत से धर्मशास्त्रादि के श्लोक और सूत्रादिक भी कण्ठस्थ कराया करते थे।

(१८८८) फिर आठवें वर्ष मेरा यज्ञोपवीत करा करके गायत्री सन्ध्या और उसकी क्रिया भी सिखा दी गई थी। और मुझको यजुर्वेद की संहिता का आरम्भ कराके उसमें से प्रथम रूद्राध्याय पढ़ाया गया था।

उसी वर्ष मेरी एक भगिनी का जन्म हुआ। और मेरे कुल में शैवमत था, उसी की शिक्षा भी किया करते थे। और पिता आदि लोग यह भी कहा करते थे कि पार्थिव पूजन अर्थात् मिट्टी का लिंग बनाके तू पूजा कर। और मेरी

१. स्वामी दयानन्द जी ने अपने स्वरचित जीवन व त्तान्त में अपने माता-पिता का नाम तथा अपना पूर्वनाम कहीं पर भी नहीं लिखा। परन्तु अन्य लिखित व त्तान्त में सभी के नाम मिलते हैं। उनके पिता का नाम कर्षन जी तिवारी और माता का नाम यशोदा अम ताबाई था और स्वामी जी का नाम मूलशंकर था जो आगे चलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

माता कहा करती थी यह प्रातःकाल भोजन कर लेता है। इससे कभी पूजा न हो सकेगी। पिता हठ किया करते थे कि पूजा अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि कुल की रीति है। तथा कुछ–कुछ व्याकरण आदि का विषय और वेद का पाठमात्र भी मुझको पढ़ाया करते थे। पिता जी अपने साथ मुझको जहाँ तहाँ मन्दिर और मेल–मिलापों में ले जाया करते और यह भी कहा करते थे शिव की उपासना सबसे श्रेष्ठ हैं इस प्रकार १४ चौदहवें वर्ष की अवथा के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता सम्पूर्ण हुई और कुछ–कुछ अन्य वेदों का भी पाठ पूरा हो गया था। और शब्दरूपावली आदि छोटे–छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पूरे हो गये थे।

(१८६४) जहाँ–जहाँ शिवपुराण आदि की कथा होती थी वहाँ पिताजी मुझको पास बैठाकर सुनाया करते थे। और मेरे पिता ने माता के मना करने पर भी पार्थिव पूजन का आरम्भ करा दिया था।

मेरे पिता ने इस वर्ष मुझे शिवरात्रि के व्रत रखने को कहा परन्तु मैं उद्यत (तैयार) न हुआ। जब शिवरात्रि आई तब पिता ने १३ त्रयोदशी के दिन कथा का महात्म्य सुना के शिवरात्रि के व्रत करने का निश्चय करा दिया था। वह कथा मुझे बहुत प्रीतिकर लगी। तभी मैं उपवास का द ढ़ निश्चय कर लिया। परन्तु माता ने मना किया था कि इससे व्रत नहीं रखा जायगा, तथापि पिता ने व्रत का आरम्भ करा ही दिया था।

मेरे यहाँ नगर के बाहर एक बड़ा शिवालय है। वहाँ शिवरात्रि के कारण बहुत लोग रात्रि के समय जाते आते रहते हैं और पूजा अर्चना किया करते हैं। और जब १४ चतुर्दशी की साम हुई तब ब्रड़े–बड़े वस्ती के रइस अपने पुत्रों के सहित मन्दिर में जागरण करने को गये। वहाँ मैं भी अपने पिता के साथ गया। और प्रथम प्रहर की पूजा करके पुजारी लोग बाहर निकल के सो गये। दूसरे प्रहर की पूजा पूंरी हो गई थी। बारह बजे के अनन्तर लोग जहाँ तहाँ मारे औंध ा के झूलने लगे और शनैः–शनैः सब लेट गये। मैंने सुन रखा था कि सोने से शिवरात्रि का फल नहीं होता है। इसलिये मैं अपनी आंखों में जल के छींटें मारके जगाता रहा। फिर पिता आदि सब सो गये।

इतने में ऐसा चमत्कार हुआ कि मन्दिर के बिल से एक ऊँदर (मूषक) बाहर निकलकर पिण्डी के चारों ओर फिरने लगा। और पिण्डी के अक्षतादि ऊपर चढ़कर भी खाने लगा। मैं तो जागता ही था, अतः मैंने सब लीला देखी। उस समय मेरे चित्त में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न हुए और प्रश्न उठने लगे। तब

मुझको शंका हुई कि जिसकी हमने कथा सुनी थी वही यह महादेव है या अन्य? क्योंकि वह तो मनुष्य के माफिक एक देवता है। वह बैल पर चढ़ता है, चलता, फिरता, खाता, पीता, त्रिशूल हाथ में रखता, डमरू बजाता, वर और शाप देता और कैलाश का मालिक है, इत्यादि प्रकार का महादेव कथा में सुना था। अतः चूहे की यह लीला देख मेरी बालबुद्धि को ऐसा प्रतीत हुआ कि जो शिव अपने पाशुपातास्त्र से बड़े-बड़े प्रचण्ड दैत्यों को मारता है क्या उसमें एक निर्बल चूहे को भगा देने की भी शक्ति नहीं?

ऐसे बहुत से तर्क मन में उठे। तब पिताजी को जगा के पूछा कि यह कथा का महादेव है या कोई दूसरा? तब पिता ने कहा कि क्यों पूछता है? तब मैंने कहा कि कथा का महादेव तो चेतन है। वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देगा? और इसके ऊपर चूहे फिरते हैं तब उन्होंने कहा कि कैलाश पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्ति बनाकर और आवाहन करके पूजा किया करते हैं। अब कलियुग में उस शिव का साक्षात् दर्शन नहीं होता। इसलिये पाषाणादि की मूर्ति बना के उन महादेव की भावना रखकर पूजन करने से कैलाश का महादेव प्रसन्न हो जाता है। ऐसा सुनके मेरे मन में, भ्रम हो गया कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है। और भूख भी बहुत लग रही थी। पिता से पूछा कि मैं अब घर जाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि सिपाही को साथ लेके चला जा परन्तु भोजन कदाचित मत करना।

मैंने घर में जाकर माता से कहा कि मुझको भूख बहुत लगी है। माता जी ने कहा मैं तुझे पहले से हीं कहती थी कि तुझसे उपवास न होगा परन्तु तूने तो हठ किया। तब माता ने कुछ मिठाई आदि दी और कहा– 'तू पिताजी के पास मत जाइयो और न उनसे कुछ कहियो अन्यथा मार खायेगा।' उसको खाकर एक बजे सो गया। दूसरे दिन आठ बजे उठा।

पिताजी प्रातःकाल रात्रि के भोजन को सुनके बहुत गुस्से हुए कि तूने बहुत बुरा काम किया। तब मैंने पिता से कहा कि वह कथा का महादेव नहीं था। इसकी पूजा मैं क्यों करूँ मन में तो श्रद्धा नहीं रही परन्तु ऊपर के मन से पिताजी से कहा कि मुझको पढ़ने से अवकाश नहीं मिलता कि मैं पढ़ सकूं। तथा माता और चाचा आदि के समझाने से ही पिता शान्त हो गये कि अच्छी बात है पढ़ने दो। फिर निघण्टु, निरुक्त, और पूर्व मीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा करके आरम्भ करते पढ़ता रहा और कर्मकाण्ड का विषय भी पढ़ता रहा।

मुझसे छोटी एक बहन फिर उससे छोटा भाई, फिर एक बहन और एक भाई हुए थे। अर्थात् दो बुहन और दो भाई थे।

(१८६६) जब १६ वर्ष की अवस्था हुई थी, तब मुझसे छोटी १४ वर्ष की बहन थी उसको हैजा हुआ। एक रात्रि में कि जिस समय नाच हो रहा था नौकर ने खबर दी कि उसको हैजा हुआ है। तब सब वहाँ से तत्काल आये और वैद्य आदि बुलाये। औषधि भी की तथापि चार घंटे में उसका शरीर छूट गया।

मैं उसकी शैया के पास दीवार का आश्रय लेकर खड़ा रहा। जन्म से लेकर उस समय तक मैंने यही प्रथम बार मनुष्य को मरते देखा था। इससे मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। सब लोग रोने लगे। मुझको रोना तो नहीं आया परन्तु मेरे मन में भय उत्पन्न हुआ कि देखो संसार में कुछ भी नहीं। इसी प्रकार किसी दिन मैं भी मर जाऊँगा। इसलिये कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे जन्म–मरण रूपी दुःखों से छूटकर मुक्ति हो। यह विचार मन में रक्खा। किसी से कुछ नहीं कहा।

सब लोग रोते थे परन्तु मेरी छाती (हृदय) में भय घुसने के कारण एक आँसू भी आँख से न गिरा। पिताजी ने मुझे पाषाण– हृदय कहा। मेरी माता जो मुझे प्यार करती थी उसने भी ऐसा ही कहा। मुझे सोने के लिये कहा गया, परन्तु मुझे शान्ति से निद्रा न आई। भला ऐसी अशान्ति में निद्रा कहाँ? बार–बार मैं चौंक पड़ता था। हमारे देश की रीत्यानुसार मेरी बहिन के रोने के पाँच चार घंटे व्यतीत हो चुके, परन्तु मैं तो रोया नहीं। इस कारण बहुत लोग मुझे धिक्कार करने लगे।

(१८६६) इतने में मेरी १६ उन्नीस वर्ष की अवस्था हो गई। तब जो मुझसे अति प्रेम रखने वाले, बड़े धर्मात्मा, विद्वान मेरे चाचा थे। उनको विशूचिका (हैजा) ने आ घेरा। मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देखने लगे। मैं भी समीप ही बैठा हुआ था। मेरी ओर देखते ही उनकी आँखों में अश्रुपात होने लगे। मुझे भी उस समय बहुत रोना आया, यहाँ तक कि रोते–रोते मेरी आँखें फूल गई। इतना रोना मुझे पूर्व कभी न आया था। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा के सद श एक दिन मरने वाला हूँ। उनकी म त्यु होने से मुझको अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ, संसार में कुछ भी नहीं है। परन्तु यह बात माता पिता से तो नहीं कही। अपने मित्रों और विद्वान् पण्डितों को पूछने लगा कि अमर होने का कोई उपाय मुझे बताओ। उन्होंने योगाभ्यास करने के लिये

कहा। तब मेरे मन में आया कि अब ग ह त्याग कर कहीं चला जाऊँ। किन्तु अन्य मित्र लोगों से कहा कि मेरा मन ग हस्थाश्रम करना नहीं चाहता। उन्होंने मेरे माता–पिता को ऐसा–ऐसा कहा। माता–पिता ने विचारा कि इसका विवाह शीघ्र कर देना ठीक है। जब मुझको मालूम हुआ कि ये मुझे २० बीसवें वर्ष में ही विवाह कर देंगे, तब मित्रों से कहा कि हमारे माता–पिता को समझा दो कि अभी मेरा विवाह न करें। फिर उन्होंने एक वर्ष जैसे तैसे विवाह रोका।

(१६००) तब तक बीसवां वर्ष पूरा हो गया। मैंने पिताजी से कहा कि मुझे काशी में भेज दीजिये, जहाँ मैं व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक आदि ग्रन्थ पढ़ आऊँ। तब माता–पिता और सब कुटुम्ब वालों ने कहा कि हम (तुम्हें) काशी को कभी नहीं भेजेंगे.। जो पढ़ना हो सो यही पढ़ाकर और तेरा अगले साल में विवाह भी होगा, क्योंकि लड़की वाला नहीं मानता।

मूल शंकर का ग ह त्याग-

मैंने तंब अपने मन में सोच–विचार कर निश्चय कर लिया कि अब वह काम करना चाहिये जिससे जन्म भरको विवाह के बखेरे से बचूं। एक मास में विवाह की तैयारी भी हो गई। फिर गुपचुप संवत् १६०३ के वर्ष में शौच के बहाने एक धोती साथ लेकर घर छोड़ के शाम के समय भाग निकला। और एक़ सिपाही के द्वारा कहला भेजा कि मैं एक मित्र के घर गया हूँ।

(१६०३) चार कोश पर एक ग्राम था, वहाँ जाकर, रात्रि को ठहर कर, दूसरे दिन (चार) प्रहर रात्रि से उठके १५ कोश चला। और एक ग्राम के हनुमान मन्दिर में जा (कर) रहा। परन्तु प्रसिद्ध ग्राम, सड़क और जानकारों के ग्राम आदि छोड़ के बीच–बीच में रोज चलने का अरम्भ किया। तीसरे दिन मैंने क़िसी राज–पुरुष से सुना कि फलाने का लड़का घर छोड़कर चला गया। उसको खोजने के लिये सवार और पैदल आदमी यहाँ तक आये थे। जो मेरे पास थोड़े से रूपये और अंगूठी आदि भूषण था, वह सब पोपों ने ठग लिया, कि तुम पक्के वैराग्यवान् तब होंगे कि जब अपने पास की चीज सब पुण्य कर दोगे। उनके कहने से मैंने सब दे दिया। इसका अभिप्राय यह है कि मार्ग में एक वैरागी ने एक मूर्ति जमा रक्खी थी, हाथ में सोने की अंगूठियाँ डालकर वैराग्य सिद्धि कैसे हो सकती है? ऐसा मुझे चिढ़ाकर मेरी ओर से वह तीनों अंगूठियाँ उसने मूर्ति के समर्पण करा ली।

मूलशंकर को ब्रह्मचारी दीक्षा

इसके आगे फिर एक लाला भगत का स्थान आया जो सायले शहर में है। वहाँ बहुत साधुओं को सुनकर चला गया। एक ब्रह्मचारी मिला, उसने कहा कि– तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ। उसने मुझको ब्रह्मचारी दीक्षा दी और शुद्ध चैतन्य[1] ब्रह्मचारी मेरा नाम रखा। और कषाय वस्त्र भी करा दिये।

फिर यही योग–साधन करने लगा। रात्रि को जब एक व क्ष के नीचे बैठा था, ऊपर पक्षियों ने घूं–घूं करना आरम्भ किया। यह सुनकर मुझे भूत का भय लगा। और मैं पीछे मठ में आ गया।

जब मैं वहाँ से अहमदाबाद के पास कोठगांगड़ा जो छोटा सा राज्य है, वहाँ आया। वहाँ बहुत से वैरागी थे। और कहीं की राणी (रानी) भी उनके फंदे में फंसी हुई थी। उन्होंने मेरे वेश को देखकर मजाक उड़ाना आरम्भ किया। तब मुझे अपने में फांसने लगे। परन्तु मैं उनके फंदे से छूटकर भागा। रेशमी किनारा धोतियाँ उन्हीं वैरागियों के कहने से वहीं फेंक दी। केवल तीन रूपये पास थे, उन्हें व्यय करके सादी धोतियाँ ली। वहाँ मैं ब्रह्मचारी नाम से प्रसिद्ध रहा। मैं वहाँ तीन मास रहा था।

कोठगांगड़ा में मैंने सुना, कि सिद्धपुर में कार्तिक का मेला होता है। वहाँ कोई तो योगी अपने को मिलेगा और अमर होने का मार्ग बतायेगा, इस आशा से मैंने सिद्धपुर का मार्ग लिया। मार्ग में मेरे गाँव के पास का जान पहचान वाला एक वैरागी मिला। उसने पूछा कि तुम यहाँ कहाँ से आये और कहाँ जाना चाहते हो? तब मैंने उनसे कहा कि घर से आया और देश भ्रमण के लिये जाना चाहता हूँ। उसने कहा– तुमने कषाय वस्त्र क्यों धारण किये? क्या घर छोड़ दिया? मैंने कहा कि हाँ, मैंने घर छोड़ दिया और मैं कार्तिकी के मेले पर सिद्धपुर को जाऊँगा। फिर मैं वहाँ से चलके सिद्धपुर में आकर नीलकण्ठ महादेव के स्थान में ठहरा कि जहाँ दण्डी स्वामी और बहुत ब्रह्मचारी ठहरे थे। उनका सत्संग और जो–जो कोई महात्मा या पण्डित मेला में सुन पड़ा, उन–उन से जाकर मेल मिलाप किया। कोठगांगड़ा में जो मुझको वैरागी मिला था,उसने मेरे पिता के पास एक पत्र भेजा कि तुम्हारा लड़का कषाय वस्त्र धारण किये ब्रह्मचारी यहाँ मुझको मिलकर कार्तिकी के मेले में सिद्धपुर को गया।

---

१. शुद्ध चैतन्य नाम से यहाँ शंकराचार्य प्रतिष्ठापित श्र ंगेरी मठ के एक ब्रह्मचारी का नाम सूचित होता है।

ऐसा सुनकर पिताजी चार सिपाहियों के सहित सिद्धपुर में आकर मेरा पता लगाके मन्दिर में जहाँ पण्डितों के बीच में बैठा था एकाएक वहाँ पहुँच कर मुझसे बोले तू हमारे कुल में कलंक लगाने वाला उपन्न हुआ। पिताजी को देखते ही मेरा कलेजा धड़कने लगा। तब मैं पिताजी की ओर देखकर– उस भय से कि पिता मुझकों मारेंगे उठकर चरण छू कर नमस्कार किया और मैं बोला कि आप क्रोधित मत होईये। मैं किसी आदमी के बहकाने से चला आया और अत्यन्त दुःख पाया। अब मैं घर को जाने वाला था, परन्तु आप आये– यह बहुत अच्छा हुआ। अब मैं साथ–साथ घर चलूंगा। तो भी क्रोध के मारे मेरे गेरू के रंगे वस्त्रों और एक तूम्बा था, उसको तोड़–फोड़ के फेंक दिया और दूसरे नवीन श्वेत वस्त्र ध ारण कराके जहाँ ठहरे थे वहाँ मुझको ले गये। और वहाँ भी बहुत कठिन–कठिन बातें कहकर बोले कि तू अपनी माता की हत्या किया चाहता है। मैंने कहा अब मैं चलूंगा। तो मेरे साथ दो सिपाही कर दिये और क्षण भर भी इसको प थक् मत छोड़ो। और इस पर रात्रि को भी पहरा रख। परन्तु मैं भागने का उपाय सोचता था। रात को जहाँ मैं सोता था एक सिपाही मेरे सिरहाने बैठा जागता रहता था। मैंने चाहा कि इस सिपाही को धोखा देकर निकल जाऊँ। इसीलिये मैं यह जानते हुए कि सिपाही रात को सोता है या नहीं, स्वयं जागता रहा। सिपाही को तो यह निश्चय हो जाता कि मैं सो रहा हूँ। इसलिये मैं नाक से खुर्राटे भरने लगता था।

सो जब तीसरी रात्रि के तीन बजे पीछे पहरे वाला बैठा–बैठा सो गया। उसी समय वहाँ से मैं लघुशंका के बहाने से भाग के आधा कोस पर एक बगीचे के मन्दिर की शिखर में एक व क्ष के सहारे चढ़के जल का लोटा साथ लेके छिपकर बैठ गया। जब चार बजे का अमल (समय) हुआ, तब मैंने उन्हीं में से सिपाही मालियों से मुझको पूछता सुना। तब मैं और भी छिप गया। वे लोग ढूँढ कर चले गये। मैं उसी मन्दिर की शिखर में दिन–भर रहा। जब अन्धेरा हुआ तब रात्रि के सात बजे उस पर से उतर कर, सड़क के छोड़ के, किसी से पूछ कर दो कोस दूर जो एक ग्राम था, वहाँ जाकर ठहरा। प्रातः काल वहाँ से चला। वहीं अपने ग्राम के या घर के पुरुषों का अन्तिम दर्शन कहां जावे तो अन्यथा नहीं। इसके पश्चात् एक बार प्रयाग में मेरे ग्राम के कुछ लोग मुझे मिले थे परन्तु मैंने पहचान नहीं दी। तत्पश्चात् आज तक किसी से मेल नहीं हुआ।

इसके बाद मैं अहमदाबाद से होता हुआ बड़ोदरे शहर में आकर ठहरा।

और वहाँ 'चेतन मठ' में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारियों और संन्यासियों से वेदान्त विषय की बहुत बातें की। और मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् जीव ब्रह्म एक है, मुझको ऐसा निश्चय उन ब्रह्मनन्दादि ने करा दिया। पहले वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ–कुछ निश्चय हो गया था, परन्तु वहाँ ठीक–ठीक द ढ़ हो गया कि मैं ब्रह्म हूँ।

फिर वहीं बड़ोदरा में एक बनारसी बाई वैरागी का स्थान सुनकर, वहाँ जाके एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेंट करके अनेक प्रकार की शास्त्र विषयक बातें हुई। फिर मैंने सुना कि आजकल चाणेदकन्याली में बड़े–बड़े संन्यासी, ब्रह्मचारी और ब्राह्मण विद्वान् रहते हैं। वहाँ जाके दीक्षित और चिदाश्रम आदि स्वामी, ब्रह्मचारी और पण्डितों से अनेक विषयों का परस्पर संलाप हुआ। और परमानन्द परमहंस से वेदान्तसार, आर्यहरिमीडेतोटक, वेदान्त परिभाषा आदि प्रकरणों का थोड़े महीनों में विचार कर लिया।

फिर मैंने ब्रह्मचर्य में कभी–कभी अपने हाथ रसोई बनाने से पड़ने में विघ्न विचार के चाहा कि अब संन्यास ले लेना अच्छा है। फिर एक दक्षिणी पण्डित के द्वारा जो वहाँ चिदाश्रम स्वामी विद्वान थे उनसे कहलाया कि आप इस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिये क्योंकि मैं अपना ब्रह्मचारी का नाम भी बहुत प्रसिद्ध करना नहीं चाहता, क्योंकि घर का बड़ा भय था, जोकि अब तक है। तब उन्होंने कहा कि इसकी अवस्था बहुत कम है इसलिये हम इसे संन्यास नहीं देते।

शुद्धचैतन्य की संन्यास दीक्षा

इसके अनन्तर दो महीने के पीछे (बाद) दक्षिण से एक दण्डी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आके चाणोद से कुछ कम कोश भर मकान जो जंगल में था। उसमें आकर ठहरे। उसको सुनकर एक दक्षिणी वेदान्ती पण्डित और मैं दोनों उनके पास जाकर शास्त्री में उनसे संभाषण किया। तब मालूम हुआ कि वे अच्छे विद्वान है। और श्रंगेरी मठ की ओर से आके द्वारिका की ओर को जाते हैं और उनका नाम परमानन्द सरस्वती था। उनसे उस वेदान्ती के द्वारा कहलाया कि आपसे यह ब्रह्मचारी विद्या पढ़ा चाहते हैं, किसी प्रकार अपगुण (अवगुण) इनमें नहीं है यह मैं ठीक से जानता हूँ। इनको आप संन्यास दे दीजिये। संन्यास लेने का इनका प्रयोजन यही है कि निर्विघ्न विद्या का अभ्यास कर सके। तब उन्होंने कहा कि किसी गुजराती स्वामी से कहो क्योंकि हम तो महाराष्ट्र (महाराष्ट्रीय) हैं। तब उससे कहा कि दाक्षिणी स्वामी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं, सो यह ब्रह्मचारी

द्रविड़ है इसमें क्या चिन्ता है? तब उन्होंने मान लिया और उसी ठिकाने तीसरे दिन संन्यास की दीक्षा तथा दण्डग्रहण कराया और (स्वामी) दयानन्द सरस्वती नाम रक्खा[1]। परन्तु दण्ड को विसर्जन भी मैंने उन्हीं स्वामी जी के सामने किया है, क्योंकि दण्ड की भी बहुत क्रिया है कि जिससे पढ़ने में विघ्न हो सकता था। फिर थोड़े दिन के बाद वे द्वारिका की ओर चले गये।

मैं कुछ दिन चाणोदकन्याली में रहकर व्यासाश्रम में एक योगानन्द स्वामी को सुना कि वे योगाभ्यास में अच्छे हैं। उनके पास जाके योगाभ्यास की क्रिया सीखके एक क ष्णशास्त्री छिनोर शहर के बाहर रहते थे, उनको सुनके व्याकरण पढ़ने के लिये उनके पास गया और व्याकरण का अभ्यास करके फिर चाणोदकन्याली में आकर ठहरा रहा। वहाँ दो योगी मिले जिनका नाम ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि था। उनसे योगाभ्यास की बातें हुई और उन्होंने कहा कि तुम अहमदाबाद में आओ, वहाँ हम नदी के पास दूधेश्वर महादेव में ठहरेंगे, वहाँ तुम आओगे तो तुमको योगाभ्यास की रीति सिखलायेंगे, वहाँ से वे अहमदाबाद चले गये। फिर एक महीने के बाद मैं भी अहमदाबाद में आके उनसे मिला और योगाभ्यास की रीति सीख के आबूराज पर्वत में योगियों को सुनकर वहाँ जाके अर्बदा भवानी आदि स्थानों में भवानीगिरी आदि योगियों से मिलके कुछ और योगाभ्यास की रीति सीख के संवत् १६११ के साल के अन्त में हरिद्वार को कुम्भ के मेले में आके बहुत साधु–संन्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा तब तक चण्डी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। जब मेला हट चुका तब ऋषिकेश में जाके संन्यासियों और योगियों से योग की रीति सीखता और सत्संग करता रहा।

हिमालय भ्रमण-

यहाँ से आगे हम स्वामी जी के शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे, क्योंकि विषय को संक्षिप्त बनाने के लिये ऐसा करना आवश्यक है। भाव उन्हीं का रहेगा केवल भाषा बदल जायेगी मात्र।

स्वामी जी हरिद्वार कुम्भ के बाद जब ऋषिकेश जाकर रह रहे थे उन्हीं दिनों में एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी महात्मा आकर उनसे मिले। दो दिन के बाद चारों मिलकर हिमालसय की यात्रा के लिये टिहरी चले गये। वह स्थान है।

---

१. इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी शंकराचार्य द्वारा दक्षिण भारत में प्रतिष्ठापित 'श्रृंगेरी मठ के अन्तर्भूत दशनाम संन्यासियों में से सरस्वती नाम के संन्यासी थे जो अन्त तक संन्यास धर्म का पालन किया

विद्याव द्धि के कारण साधुओं और राजपण्डितों से परिपूर्ण और प्रसिद्ध है।

टिहरी में रहते समय एक दिन एक रईस व्यक्ति ने स्वामी जी को भोजन के लिये आमंत्रित किया। स्वामी जी जब भोजन के लिये गये तो देखा कि भोजन के लिये मांस आदि ले जा रहे हैं। स्वामी जी वह देखकर उल्टे पांव अपने स्थान पर लौट आये, क्योंकि संन्यासी के लिये मांस भक्षण निषेध है। थोड़े दिन टिहरी रहकर स्वामी जी अकेले श्रीनगर चले गये और वहाँ केदारघाट पर एक मन्दिर में निवास किया। वहाँ पर एक दिन गंगा गिरि नामक संन्यासी से उनकी भेंट हुई जो पहाड़ के ऊपर जंगल में रहा करते थे। वार्तालाप से पता लगा कि महात्मा विद्वान और योगनिष्ठ है। स्वामी दयानन्द जी उनसे प्रायः मिलते रहते और योग विद्या तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा होती रही। स्वामी जी को गंगा गिरि जी का सत्संग उत्तम लगा। इसलिये वे उनके साथ दो महीने तक रहे।

उसके बाद श्रीनगर से रुद्रप्रयाग, अगस्त्यमुनि, गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, भीमगुफा, त्रियुगीनारायण के मन्दिर, ऊखीमठ आदि स्थानों में थोड़े–थोड़े दिन रहकर स्वामी जी जोशीमठ पहुंच गये। वहाँ पर बहुत से साधु संन्यासियों के साथ जो संन्यासाश्रम की चतुर्थ श्रेणी के सच्चे महात्मा थे और बहुत से योगियों तथा विद्वान महन्तों से भेंट हुई। उनसे वार्तालाप से स्वामी दयानन्द जी को योगविद्या सम्बन्धी और ज्ञान–ध्यान सम्बन्ध में बहुत सी महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई। इसलिये स्वामी जी कुछ दिन तक वहीं ठहरे रहे। उसके बाद स्वामी जी बद्रीनारायण के लिये चल पड़े। वहाँ जाकर बद्रीनारायण मन्दिर के तत्कालीन महन्त राव जी से मिले और उन्हीं के पास स्वामी जी कई दिनों तक रहे और अलखनन्दा के इस पार और उस पार के सब रमणीक स्थानों को देखा। उसके बाद स्वामी जी बद्रीनाथ से उतकर कर मैदानी इलाके में आ गये। हिमालय की यात्रा स्वामी जी ने बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया है कि– किस प्रकार से वे बड़े बड़े ऊँचे पर्वत तथा बीहड़ जंगलों में तथा गुफाओं में सिद्धयोगियों की तलाश में भटकते रहे हैं। परन्तु स्थानाभाव के कारण उन सबका विवरण हम प्रस्तुत न कर सके। उसके पश्चात् स्वामी जी नर्मदा के तट पर भ्रमण करने लगे। यहीं पर उन्हें मथुरा में निवास करने वाले एक प्रज्ञाचक्षु संन्यासी महात्मा का पता लगा जो व्याकरण शास्त्र के विद्वान थे।

स्वामी दयानन्द १८६० में मथुरा आये और ढाई वर्ष तक प्रज्ञाचक्षु (नेत्रहीन) स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के विद्यार्थी के रूप में रहे। उनसे व्याकरण, निरुक्त तथा वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। विराजानन्द

स्वामी पहले अलवर में थे बाद में मथुरा आकर रहने लगे। उस समय उनकी आयु ८१ वर्ष की थी। उनके उदर में सदा शूल–पीड़ा रहती थी। स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी भी दशनाम संन्यासी सम्प्रदाय के ही एक महात्मा थे। वे दण्डी परम्परा के थे। परन्तु उनके विचारों में बदलाओं आ गया था। जिसका प्रभाव स्वामी दयानन्द जी पर पड़ता रहा है।

जब स्वामी दयानन्द सरस्वती का विद्याध्ययन समाप्त हुआ, तब दयानन्द ने गुरुदक्षिणा के लिये पात्र में लौंग ले गये थे। परन्तु स्वामी विरजानन्द जी ने उनसे गुरुदक्षिणा के रूप में प्रतिज्ञा कराते हुए वचन ले लिया कि वे अपना शेष जीवन वेद विद्या का प्रचार करने तथा ऋषि–ग्रन्थों के पठन–पाठन में लगायेंगे। स्वामी दयानन्द ने भी मौन भाव से गुरु के आदेश को स्वीकार कर लिया और कार्यक्षेत्र में उतर पड़े।

विद्याध्ययन के पश्चात् स्वामी दयानन्द दो वर्ष तक आगरा में रहे और कभी–कभी उनसे मिलकर शंका समाधान आदि कर लिया करते थे। फिर पुस्तक लेखन आदि कार्य प्रारम्भ कर दिये थे। प्रारम्भ में उन्होंने गंगा के तटवर्ती प्रान्तों में भ्रमण करके लोगों को वैदिक धर्म के मूलभूत तत्त्वों की शिक्षा दी। सन्ध्या, अग्निहोत्र, गायत्री जप आदि उपासना प्रणाली का महत्व आदि को बताया फिर उन्होंने काशी, फर्रुखाबाद, कानपुर आदि अनेक स्थानों में जाकर व्याख्यान दिये और कहीं–कहीं शास्त्रार्थ भी करते रहे।

सन् १८७२ के दिसम्बर के मास में स्वामी दयानन्द ब्रह्मसमाज के नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा अन्य प्रबुद्ध बंगालियों के निमन्त्रण पर कलकत्ता गये। कुछ काल तक उन्होंने वहां निवास किया। उसी अवसर पर उन्हें बंगाल के उन शिक्षित भद्र लोगों का परिचय प्राप्त किया जो उन दिनों भारत में धार्मिक, सांस्क तिक तथा शैक्षिक जाग ति के कार्य में लगे हुए थे। देवेन्द्रनाथ ठाकुर के अतिरिक्त केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों से उनकी भेंट हुई। धर्म, समाज तथा राष्ट्र की व्यापक सेवा के लिये क्या कुछ किया जाना आवश्यक है यह सब सोचने विचारने का अवसर मिला।

आर्य समाज की स्थापना

सन् १८७५ ई० में जब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी बम्बई में थे, उसी समय उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की और तब से इस संगठन का नाम 'आर्य समाज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्वामी दयानन्द ने अपने व्यापक अध्ययन और शास्त्र ज्ञान के द्वारा वे इस निष्कर्ष तक पहुंचे थे कि आर्य जाति के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ वेद है। वेदों में जिन शिक्षाओं का उल्लेख है, वे देश, जाति,

वर्ग, सम्प्रदाय आदि की सीमाओं से परे है। उससे समुची मानव जाति को अभ्युदय की ओर ले जाने में पूर्ण समर्थ है। इसलिये उन्होंने वेदों को आर्य जाति का प्रधान धर्मग्रन्थ माना है। वेदों के अनुसार ही अपने जीवन का आदर्श निर्माण करने के लिये कहा है। स्वामी विरजानन्द सरस्वती के पूर्व आदेशानुसार वेदों पर भाष्य लिखने का कार्य आरम्भ किया। वेद की व्याख्या करने के लिये व्याकरण, निरक्त, छन्द, पदपाठ, प्रतिशाख्य, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, तथा मीमांसा एवं वेदान्त आदि वैदिक वाङ्मय की आवश्यकता होती है।

यद्यपि चारों वेदों के भाष्य (सायण भाष्य आदि) पहले से ही मौजूद थे फिर भी उन्होंने एक नयी पद्धति से वेद भाष्य करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों में यजुर्वेद का भाष्य पूर्ण हुआ। उसके पश्चात् ऋग्वेद का कुछ अष्टकों तक ही भाष्य कर पाये थे कि स्वामी जी बीमार पड़ गये, क्योंकि उनको जहर दिया गया था और वेद भाष्य का कार्य रुक गया। जितना उन्होंने भाष्य किया था वह उपलब्ध है। शेष जो चारों वेदों का भाष्य है अन्य विद्वानों द्वारा किया गया भाष्य मिलता हैं।

स्वामी दयानन्द जी ने वेद भष्य से पूर्व तथा बीच–बीच में कुछ छोटी बड़ी स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे थे। उनमें से एक का नाम 'सत्यार्थ प्रकाश' है। उस ग्रन्थ में स्वामी जी ने विभिन्न मत–मतान्तरों का खूब खण्डन किया। ईसाई, मुस्लिम, जैन बुद्ध आदि सभी मतों का खण्डन किया। केवल यही नहीं हिन्दूधर्म की भी कटु आलोचना की है। इससे सनातनी विद्वान् पण्डित बहुत बिगड़े और स्वामी दयानन्द के त्रैतवाद सिद्धान्त को और उनके धर्ममत को जोरदार खण्डन करके उस पर पानी फेर दिया[1]। अतः जो कार्य स्वामी दयानन्द ने करना चाहते थे। वह पूर्ण न हो पाया अधूरा ही रह गया। अर्थात् एक धर्म सम्प्रदाय मात्र बनकर रह गया।

स्वामी जी का अन्तिम क्षण

काफी दिनों से स्वामी जी का इलाज चल रहा था किन्तु सब व्यर्थ आज आराम का दिन आया है। स्वामी जी ने चार बजे सायं आत्मानंद को बुलाया– वे आकर खड़े हो गये। हमारे पीछे की ओर आकर खड़े हो जाओ या बैठ जाओ। आत्मानंद जी स्वामी जी के सिरहाने आकर बैठ गये। आत्मानंद! क्या चाहते हो?

१. जैस पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र क त 'दयानन्द तिमिर भास्कर' पं० कालूराम शास्त्रीक त 'वैदिक सत्यार्थप्रकाश', पं० दीनानाथ शास्त्री क त 'सनातन धर्मालोक' १० खण्डों में, पं० माधवाचार्य क त 'क्यों? दो खण्डों में और क पात्री स्वामी क त 'वेदार्थ पारिजात' दो

खण्डों में है। इन ग्रन्थों में स्वामी दयानन्द मत का खण्डन है।

आत्मानंद ने कहा– 'परमात्मा से यही चाहता हूँ कि आप ठीक हो जाये। स्वामी जी ने कहा– 'यह तो देह है इसका क्या ठीक होना। हाथ उठाया और आत्मानन्द के सिर पर फिराया– आनन्द से रहना। गोपाल गिरी संन्यासी काशीं से स्वामी जी से मिलने आये थे। वे भी स्वामी जी के पास आकर वे भी यही चाहते थे कि स्वामी जी शीघ्र स्वस्थ हो जाये। परन्तु स्वामी जी ने केवल इतना ही कहा कि– 'भाई अंच्छी प्रकार से रहना। स्वामी जी के दर्शन के लिये अन्य स्थानों से भी उनके दर्शन के लिये कुछ लोग आये हुए थे, वे भी स्वामी जी के पास आकर खड़े हो गये। तब स्वामी जी ने उनकी ओर क पा द ष्टि से देखा और अपने पीछे खड़े हो जाने को कहा और साथ ही यह भी कहा कि– उदास क्यों होते हो, ध ैर्य रखो। फिर दो दुशाले और दो सौ रूपये नगद आदेशानुसार मंगाए गये कहा– आधे भीमसेन को आधे आत्मानन्द को दे दो पर उन्होंने नहीं लिये लौटा दिये।

शाम पांच बज रहे थे। लोगों ने पूछा– महाराज! अब तबियत कैसी है? अच्छी है, तेज और अंधकार का भाव है। स्वामी जी ने कहा चारों ओर के द्वार खोल दो, द्वार खोल दिये गये। आज कौन सा पक्ष है? क्या तिथि है? क्या वार है? उत्तर मिला– क ष्ण पक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का आरम्भ अमावस मंगलवार है। स्वामी जी ने ऊपर देखा, मन को एकाग्र किया, कुछ वेद मंत्र पढ़े, कुछ संस्क त में ईश्वर की उपासना की। फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का वर्णन किया और गायत्री पाठ करने लगे फिर चित्त को समाहित करके ध्यान युक्त रहे। तब सहसा आँखें खोल दिये– हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, आह, तूने अच्छी लीला की। उस समय ६ बजे थे दीपावली का दिन था। सीधे लेट गये, स्वयं करवट ली और एक बार श्वांस को रोककर एक साथ बाहर छोड़ दिया और इसी के साथ स्वामी जी की दिव्यात्मा देह से प थक हो गई– देह त्याग कर दिया। विधाता के विधानानुसार केवल मात्र ५६ वर्ष की आयु में ही स्वामी दयानन्द जी का ३० अक्टूबर १८८३ को अजमेर शहर में देहान्त हो गया। ○

–विज्ञानानन्द

(७) योगीराज योगेश्वरानन्द सरस्वती

अठारहवीं सदी के अन्त में और एक योगी महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ। उसका नाम था स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती। उनका जन्म सन् १८८६ ई० ५ सितम्बर को मेरठ शहर के समीप में स्थित बिजरौल के एक सम्भ्रन्त परिवार में हुआ था। उनके जन्म का नाम व्यासदेव था जो आगे चलकर स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। बालक कुछ बड़े हो जाने पर विद्याध्ययन के लिये स्थानीय स्कूल में भर्ती करा दिया गया। उन दिनों प्रायः स्कूलों में उर्दू और अंग्रेज़ी भाषा पढ़ायी जाती थी।

कुछ दिन स्कूल में पढ़ने के बाद एक दिन बालक व्यास देव स्वामी रामानन्द गिरि जी का नाम सुनकर उनके दर्शन के लिये गये। वार्ता होने लगी। स्वामी जी ने पूछा क्यों भाई! स्कूल में पढ़ने जाते हो न ?
व्यासदेव ने उत्तर दिया 'जी हाँ पढ़ने जाता हूँ! क्या–क्या पढ़ते हो? 'उर्दू और अंग्रेजी पढ़ता हूँ। स्वामी जी ने पुनः पूछा कि क्या हिन्दी और संस्क त नहीं पढ़ते हो? व्यासदेव ने कहा हमारे स्कूल में ऊर्दू और अंग्रेजी के सिवा हिन्दी या संस्क त भाषा की पढ़ाई नहीं होती। मैं हिन्दी और संस्क त तो पढ़ना चाहता हूँ परन्तु स्कूलों में इनकी पढ़ाई नहीं होती। क्या आप मुझे हिन्दी और संस्क त पढ़ा सकते हैं? स्वामी जी ने कहा कि यदि तुम्हारी पढ़ने की इच्छा हो, तो हम पढ़ा सकते हैं? व्यासदेव ने कहा ठीक है मैं कल से ही स्कूल के बाद आपके पास पढ़ने के लिये आया करूँगा।

वास्तव में थोड़े ही दिनों में व्यासदेव जी ने हिन्दी और संस्क त भाषा का ज्ञान कुछ तो प्राप्त कर ही लिया। स्वामी रामानन्द गिरि जी ने व्यासदेव को पढ़ाते समय बीच–बीच में महाभारत, रामायण की कथा और इनके अतिरिक्त स्वामी शंकराचार्य, गौतमबुद्ध, महावीर स्वामी तथा स्वामी दयानन्द आदि महापुरुषों का महत्वपूर्ण जीवन व तान्त सुनाया करते थे। परन्तु व्यासदेव जी पर तीन महापुरुषों का बड़ा प्रभाव पड़ा । वे हैं स्वामी शंकराचार्य, गौतम बुद्ध और स्वामी दयानन्द। बालक व्यासदेव जी ने यह द ढ़ निश्चय कर लिया कि स्वामी शंकराचार्य के समान महान् ज्ञानी, गौतम बुद्ध के समान महान त्यागी और तपस्वी तथा स्वामी दयानन्द के समान नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन करके ही रहूँगा। आगे चलकर यही हुआ। आत्म विज्ञान, ब्रह्म विज्ञान, प्राण विज्ञान तथा ज्योर्तिविज्ञान आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर ज्ञान प्राप्ति का परिचय दिया। त्याग, तप और लम्बी साधना के द्वारा आत्मदर्शन करने का भी साक्ष्य दिया है और आजन्म

अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके भी दिखाया है।

व्यासदेव जी का सर्वप्रथम मार्गदर्शक गुरु स्वामी रामानन्द गिरि जी ही थे। इसलिये उन्होंने स्वामी जी से एक दिन पूछा कि– संस्क त अध्ययन और योग–साधना के लिये कौन सा अनुकूल स्थान है? स्वामी जी ने हरिद्वार का नाम बताया। बस फिर क्या था १४ वर्ष की अवस्था में ही एक दिन रात १२ बजे एक कम्बल और कुछ रुपये साथ में लेकर घर से भाग निकले और हरिद्वार के मोहन आश्रम में जाकर ब्रह्मचारी वेश धारण कर संस्क त का अध्ययन करने लगे। कुछ दिन के बाद वहीं उनको एक योगी से भेंट हुई जो गंगा पार कजलीवन में रहकर योगाभ्यास किया करते थे। उस योगी का नाम सत्यदेव था। ब्र० व्यासदेव भी कुछ दिन कजलीबन में जाकर सत्यदेव योगी से योगशिक्षा प्राप्त करते रहे। बाद में पुनः मोहन आश्रम में लौट आये। एक बार पिताजी को जब पता चला तो मोहन आश्रम से पकड़ कर उसे घर ले गये थे। परन्तु थोड़े दिन के बाद फिर घर से निकल भागे फिर किसी के हाथ नहीं आये।

उसके बाद वे कश्मीर चले गये और कश्मीर के हजूरी बाग में अकस्माद् एक योगी मिल गये जो गान्धरबल तथा सोनमार्ग होते हुए सिन्धु नदी के तट पर ले जाकर एक गुफा में रख दिया और स्वयं एक अन्य गुफा में वे आसन जमाये। दूसरे दिन से योग–साधना का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। उस योगी ने एक डेढ़ महीने में ही यौगिक आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ एवं षट्कर्म आदि भली प्रकार सिखा दिया और साथ ही कई–कई घंटे तक शून्य समाधि लगाने का उपाय आदि भी सिखा दिया। परन्तु एक दिन वह योगी अचानक कहीं चले गये फ़िर कहीं पर भी नही मिले। परन्तु ज्ञानपूर्वक समाधि के द्वारा आत्मदर्शन तथा स्वरूपावस्थिति प्राप्ति के बिना योग पूर्ण नहीं होता। इसलिये आत्मदर्शन प्राप्त करा देने वाले समाधिनिष्ठ योगीगुरु की खोज में सम्पूर्ण भारतवर्ष में भटकते रहे। अन्त में हिमालय में ही गंगोत्री के मार्ग पर हरसील के पास एक गुफा में एक सिद्ध योगी मिले जो तिब्बत के तीर्थापुरी से आये हुए थे। उन्होंने ही ब्र० व्यासदेव जी के सिर पर हाथ रखकर समाधि लगा दी थी और १७ घंटे तक समाधि में बिठा कर आत्म विज्ञान और ब्रह्म विज्ञान का पूर्णतया साक्षात् दर्शन करा दिया था जिससे उनकी आगे जिज्ञासा ही समाप्त हो गई और पूर्ण अनुभव करने लगे। उस सिद्ध योगी का नाम था स्वामी आत्मानंद अवधूत।

तब से उन्होंने अपने प्राप्त किये योग–विज्ञान को दीर्घकाल तक साधना के द्वारा खूब पुष्ट किया और जिज्ञासु साधकों तक पहुंचाने के लिये आश्रमों की स्थापना करने में लग गये ताकि हमेशा उसका अभ्यास चलता रहे। यही कारण

है कि सन् १६४८ ई० में गंगोत्री धाम में योग निकेतन' की स्थापना की। सन् १६५५ ई० में उत्तरकाशी में योग निकेतन की स्थापना की गई और १६६२ ई० में उन्होंने विद्वत संन्यास धारण किया और सन् १६६७ ई० में मुनि–की–रेती, ऋषिकेश में योग निकेतन की स्थापना की जहाँ पर बारह मास योगाभ्यास कराया जाता है। अब तक यह सिलसिला चालू है और आगे भी रहेगा ऐसी आशा है। उस महान् योगी पुरुष का ६६ वर्ष के दीर्घ जीवन काल के अनन्तर २३ अप्रैल सन् १६८५ ई० में मुनि–की–रेती, ऋषिकेश योग निकेतन आश्रम में ब्रह्मलीन हो गया। O

–विज्ञानानन्द

आरजू है एक भगवान से

संकलनकर्ता- एम.एल. बागडी जी

यही है अरजू भगवन्, मेरा जीवन यह आला हो।
पर उपकारी सदाचारी, व लम्बी उम्र वाला हो।।
सरलता शील और सद्‌गुण, हों भूषण मेरे जीवन के।
सचाई सादगी श्रद्धा के, मन सांचे में ढाला हो।।
तजूँ छल झूठ चालाकी, बनूं सत्संग अनुरागी।
गुनाहों और खताओं से, मेरा जीवन निराला हो।।
तेरी भक्ति में ऐं भगवन्! लगा दूं अपना मैं तनमन।
दिखावे के लिये हाथों में, थैली हो न माला हो।
मेरा वेदोक्त ही जीवन, कहा ॐ धर्म अनुरागी।
रहूँ आज्ञा में वेदों की, न हुक्मे वेद टाला हो।
तजूं सब खोटे भावों को, तजूं सब वासनाओं को।
तेरे विज्ञान दीपक का, मेरे मन में उजाला हो।
सदाचारी रहूँ हरदम, बुराई दूर हो मन से।
क्रोध और काम न मुझ पर, न जादू कोई डाला हो।
मुसीबत हो कि राहत हो, रहूँ हर हाल में साबिर।
न घबराऊँ न पछताऊँ, न कुछ फरियाद आला हो।
पिला दे मोक्ष की घुट्टी, मरण जीवन से हो छुट्टी।
विनय अन्तिम यह अर्जुन की, अगर मंजूर वाला हो।

जीवन की परिपूर्णता ईश्वर प्राप्ति में है

-सुश्री जानकी देवी गुप्ता

एक राजा था वह एक दिन बाजार घूमने जा रहा था, जाते–जाते रास्ते में उसकी नजर एक मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्हार पर पड़ी। राजा उसके पास जाकर खड़े हो गये और पूछा– 'तुम क्या बना रहे हो? कुम्हार ने उत्तर दिया 'मैं मिट्टी का दीया बना रहा हूँ। राजा ने कहा– मुझे एक पानी का मटका चाहिये – क्या बना दोगे? कुम्हार ने कहा– हाँ बना दूंगा। आपको किस आकार का मटका चाहिये? यह सुनकर राजा का माथा ठनका और वे सोच–विचार में पड़ गये। सोचते–सोचते उसका ध्यान स ष्टिकर्ता परमेश्वर की ओर गया। परमेश्वर भी तो जीवों को उनके अपने–अपने कर्मानुसार भिन्न–भिन्न आकार (सकल) देकर उत्पन्न करता है। अच्छा कर्म करने वालों को सुन्दर और उत्तम शरीर देता है और बुरा कर्म करने वालों को निक ष्ट शरीर देता है। अतः वही सबसे बड़ा कारीगर है उसी की शरण में जाना कल्याणकर है।

इसलिये राजा ने कुम्हार से कहा– 'भाई तुम तो दीया हो बनाय मुझे मटका नहीं चाहिये। मुझे तुमसे बड़ा कारीगर का पता मिल गया है। अतः मुझे जो चाहिये उसी से बनवा लूंगा। इस विचार से राजा को बड़ा वैराग्य उत्पन्न हो गया और राजध ानी लौटकर अपना राजपाट अपने पुत्र को सौंप कर वैराग्य धारण कर जंगल को चला गया और भगवत् उपासना में लग गया। परिणाम स्वरूप उसे आत्मदर्शन प्राप्त हो गया और आत्मदर्शन के साथ–साथ आत्मज्ञान प्राप्त कर अपना जीवन सफल बना लिया। यही हमारे आपके तथा सबके जीवन में एकमात्र उद्देश्य है। भगवत् प्राप्ति। भगवत् प्राप्ति के बिना जीवन निष्फल है यह निश्चित है। ○

ले अवतार हरी

जब जब धर्म की हानि जगत में, लें अवतार हरी।
भगत–हित लें अवतार हरी। जगत–हित लें अवतार हरी।।
मत्स्य–रूप ले बेद उधारे। कूर्म–रूप मन्दराचल धारे।।
धरि बराह–वपु, भू–उद्धारक। दीनदयाल हरी।।
न सिंह–रूप प्रह्लाद दुलारे। वामन बन पहुँचे बलि द्वारे।।
परशुराम बनि छत्र संहारे। अधरम नाश करी।।
पुरुषोत्तम बन रावण मारे। लीलाधर बनि कँस पछारे।।
बुद्ध अहिंसा के प्रतिपादक। कल्कि विध्वंस करी।।
हम बैठे हैं आस लगाये। दया तुम्हारी फिर हो जाये।।
धर्म की जय हो, हे प्रतिपालक। 'रमण' बने बिगरी।।

–'रमण' भजनानन्दी

सबका सहारा एक भगवान्

संकलनकर्ता– एम.एल. बागड़ी जी

दुःख दूर कर हमारा संसार के रचैया।
जल्दी से दो सहारा मझधार में है नैया।
तुम बिन कोई हमारा रक्षक नहीं यहाँ पर।
ढूँढा जहान सारा तुमसा नहीं रखैया।
दुनिया में खूब देखा आँखें प्रसार करके।
साथी नहीं हमारा माँ, बाप और भैया।
सुख के सभी हैं साथी, दुनिया के मित्र सारे।
तेरा ही नाम प्यारा, दुःख दर्द से बचैया।
दुनिया में फंस के मुझको हासिल हुआ न कुछ फल।
तेरे बिना हमारा कोई नहीं सुनैया।
चारों तरफ से हम पर गम की छटा है छाई।
सुख का करो उजाला प्रकाश के करैया।
अच्छा बुरा है जैसा राजी में, 'राम' रहता।
चेरा है यह तुम्हारा, लेओ सुध लिवैया। ○

सूई

सुश्री जानकी देवी गुप्ता

सूई एक छोटी सी चीज है, पर इसमें भी सब तरह की वैरायटी हैं– मोटी, पतली, तथा कपड़े सीने वाली इत्यादि। अगर सूई न हो, तो इन्सान कपड़े नहीं पहन सकता था और कपड़े के इतने डिजाईन भी नहीं बन सकते थे। जब सूई टूट जाती हैं तभी वह काम के लायक नहीं रहती, परन्तु ठीक रहते बहुत काम आती है। केवल साधारण व्यक्तियों को ही नहीं किन्तु चिकित्सक डॉक्टरों के लिये तो वह बहुत ही काम की चीज है। आदमी जब बीमार पड़ जाता है और वह बहुत सीरियस अवस्था में पहुंच जाय, तो यही सुई इन्जेक्शन का रूप लेकर इन्सान को मरने से बचाती भी है। यद्यपि जन्म और मरण सबके साथ जुड़े हुए हैं जिससे यही कहा जाता है कि–

कोई आज गया कोई कल गया, कोई जाने को तैयार खड़ा है।
सुब्ह होती है शाम होती है सारी जिन्दगी तमाम होती है।।

The Essential Colourlessness of the Absolute

-Swami yogeshwarananda Saraswatiji Maharaj

A portion of a mantra in the Yajurveda reads as follows: "It is' us' ruma dhiranam ye nastadvicacaksire"-(Yajuh. Adh. 40, m. 13), This leads to the view that even before Yajurveda came into existence, there were other 'Risis' as well. From those consistently erudite seers of Vedic knowledge and truths it was that Vayu 'risi' 'had been hearing, or was still receiving his precious lore of learning.' This clearly denotes that those 'risis' belonged to this very cycle of creation;—herein, a suggestion of the previous or earlier cycle of creation would be merely far-fetched and out of context. Some scholars have interpreted it as meaning 'the cycle of Creation preceding the present one.' They seem to have stretched out the truth with a purpose to prove the eternal character of the Vedas, and also the doctrine that the four particular 'Risis' alone were the first recipients of the Divine Revelation. This is something far from the true core of reality. It scarcely justifies the view that, originally, God Himself 'authored', or revealed, the Vedic Fountain of Knowledge.

In fact, round about an early stage of the Creation, collection would probably have been made either of the knowledge attained, or the mantras composed by the numerous 'Risis', who at diverse times had been gathering their divine fortune, along with which the compiling 'Risi' might well have included his own divinely poetic wealth. Otherwise, the reading 'Iti s'us'ruma dhiranam" would not have been given. The words Purvaih risibhih" or sentences of similar contents, often met with in the Vedas, likewise prove that prior to the four 'risis' concerned, there had been others, too, who mystically knew the Vedic mantras, or their inspiring portent. These four, in a sense, were the pioneer compilers, or even half-way authors, quite admittedly. The four Vedas, and similarly the religious books of other doctrinaire creeds, which believe them to be a Heavenly Revelation,-all these may be said to be a paltry portion of that vast 'Unending Ocean of Knowledge', which sits and sways over all conceivable science and arts inherent in the Grand Creational Process emanating from it, and includes,

without exception everything relating to the Supreme Being, the mysterious finite soul, and Nature, from whose universal womb issue forth not only this drama of life and death but also the picturesque panorama of objects 'both beauteous and sublime'. Men, or the gods or heavenly angels, seers or the sages, alike, prophets pundits, moulvis, church fathers, or the learned 'illuminati' of any religious sects, :' or that matter-all of them have been, and are, able to know a mere insignificant bit of the Vast Universe and still Vaster Endlessly Supreme Beautitude. Posterity's greatest misfortune lies in the fact that they are satisfied and fondly contented even with their meagre illumination. There appears to be no end in this world to the ever-expanding off-shoots of Inert Matter, as well as the All-pervading Conscious Force. So far, it has neither been perceived in the past, nor can it ever be visualized in times to come. This poorly limited and finite human intellect bolstered up in a small brainy portion of man's tiny body will never be able to guage the extremity of these two Endless Entities Men and the gods alike, ever since the time of Creation, have been tirelessly seeking and searching for a viable knowledge of them. And there is no gainsaying that the search for knowledge of these Ultimate Realities will everlastingly continue to be made until the very last and low ebb of human life on earth. Never-the-less, it can hardly ever be asserted that a complete picture of their possibilities has been attained and the last word upon them finally uttered. It is not implied, however, that all effort at the quest being almost futile, it should be suspended, or despairingly given up.

On the contrary, wisdom lies in ceaselessly pursuing our investigations in regard to the real nature of the Inert Vastness of Matter, the Supreme Innate Consciousness, and the Finite Conscious Factor in living beings as long as we are not in the gracious sight of a serenely and sublimely blissful condition of our inner satisfaction.

As regards the Divine benefactors (devatas), there is little misgiving or objection. Every mantra, which bears a certain godly name affixed to it expounds that very particular subject implied by it. This is indubitably borne out and confirmed by the traditional system obtaining in the classical field or Vedic studies. Therefore, no grating doubt is presented in this respect. ○

GURU

-Compiled by M.L. Bagri

When we want food, we approach our mother and when we want money or education we approach our father. But when we want ourselves to be liberated from the human bondages, we have to approach a *Guru*. One cannot attain liberation without the grace of a *Guru*. When we sincerely pray to God, He reveals himself in the form of a *Guru*. If we have complete faith in *Guru* he will bless and show us the way to liberation. In fact, God is needed only when we are unable to find a *Guru*. *Guru* Bhakti is higher than the Bhakti to God. When God is angry, *Guru* will protect us and when *Guru* is angry, there is no protector to save us. If we surrender to *Guru* without any reservations, he will show us the way to liberation. It is due to the lack of *Guru* Bhakti, the Iswara Bhakti (Bhakti to God) is waning in the heart of man.

The term *Guru* is derived from the Sanskrit word 'GU'. 'RU' GU means darkness and RU means removal (i.e.) removal of darkness. Thus *GURU* is one who removes the darkness of ignorance. One who learns Vedas thoroughly and understands it well through constant practices, can only be a *Guru*. In school and colleges many teachers perform teaching. But only a few are eligible to remove the doubts and make the student an expert in the subjects. Acquiring "Siddhis" does not mean that one has attained Self-realization. Great Rsis (sages) do not show any miracles to exhibit their knowledge or power. Through miracles, a *Guru* can encourage the aspirants and instill faith. A *Guru* is the master of the knowledge. He wards off all our suffering, sorrows and troubles. He directs us to the right path. When we are drowning in the ocean of bondage he saves us. And we should worship *Guru* and bow to him.

Qualities of *Guru*-

Guru is God in human form. Being in the human form, there are some limitations on the characteristics of a *Guru*. In an educational institute, a teacher should be soft and easy to approach. There should not be any restrictions on the student to approach a teacher. The teacher be easily approachable. The teacher should not be harsh. Even though a teacher is highly qualified, he should not be overpowered by ego. Following are some of the qualities, *Guru* should possess.

A Guru should not expect anything from his students-

A *Guru* is very much essential for a student. He is not only teaching, but also showing the path of liberation. We cannot repay a Guru in any manner. Even if we place the entire universe at his feet, it will not be equal for the services he rendered. In an educational institute, one of the students got good marks in all the subjects and secured a good job with high salary. The Guru should not claim any benefit from this student. If a Guru claims any benefit from this students, his act of teaching becomes purely commercial. A student shines only because of Guru and the Guru's service is never replaceable. Kabiradasa a renowned Hindi philosopher-poet once said, "if God and Guru appear before me, I will ignore god and be prostrate Guru. When I was in a confused state of mind, it was only the Guru who lifted me to the top and only afterwards God appeared before me".

Mother is the first Guru-

For any living being, be it a tiny ant or a giant Elephant, mother is the first Guru. She teaches her children how to walk and go in search of food. For us too, mother is the first Guru and she trains the child from the first toddle to a giant walk leading us to a perfect human being. The mother carries the child in her womb for nine months. When the child is in her womb, she undergoes many strains. She takes food that suits the child, sleeps on the posture suitable to the child. During the time of delivery, she suffers pain, cleans the clothes of the child, takes medicine when the child falls ill, spends sleepless nights, cleans the bed when the child dirties it, soothes the child by taking her on the shoulder when it cries. While feeding food, she tells the moral stories from Holy Scriptures thereby invoking the child to follow Dharma, the righteous path. When the child grows up, father leads the child to school. Father is now the second Guru. In the Gurukula (school), the teacher who shapes the child to perfection is the third Guru. Thus mother is the first Guru, Father is the second guru and teacher is the third Guru.

Here, mother acts as Guru who makes him fit for liberation, while father, himself is god accepting and bestowing his blessings on the devotee.

The Easiest Way for Liberation-

a. Namasamkirtana-

A man had fallen into a well. He requested a passerby to help him to come out. The passerby dropped a long rope and asked him to hold the rope

and come out. By holding the rope, he came out. The man who came out of the well wanted to give something to the person who helped him. But the passerby refused to accept the help. The passerby replied that he felt happy that he saved somebody who needs helpand wanted nothing in return. In this, the well is Samsara (family) and the rope is the way for Moksa (liberation). Many of our Gurus have realized that Namasamkirtana (chanting of holy names) is the unrestrained way for attaining liberation. Mira, Alwars, Bhadrachala Ramadasa Nayanmars, were some of the devotees who had attained liberation through namasamkirtana. Namasamkirtana (praising the Lord) is the easiest way for liberation. Just the utterance of the word Rama itself will bring you liberation.

b. Guru Śeva

By doing services to Guru, all our sins will be washed off and we are fit to lead dthe way to liberation Pagayagna's son Sasivarna suffered a lot due to sins. He was advised to go to Saktiswara temple and go around the deity Saktiswara for 108 times. He visited the temple and did the 108 Pradaksinas. He then became a disciple of RsiKarunigar. Due to some of his sins being abolished. He did services to the Guru like collecting firewood, washing the cloths of the Guru, cleaning the house, and eating the food after his Guru finished eating. By doing these services, some more of his sins were washed and he was fit to receive the teachings from his Guru. Guru taught him all that were needed to attain liberation. Sasivarna became sinless. His father and his ancestors have also attained eternal bliss.

c. Complete surrender

In Bhagavad Gita, Lord Krsna explained to Arjuna about the concept of surrender. He explained that if you surrender yourself completely to God without any reservations, God is sure to bestow his blessings on you.

Once Girisa Candra Bose visited Ramakrsna Paramahamsa and requested Swamiji to show the way for liberations. Swamiji told him to chant Divine names in the morning and evening. Girisa replied that it is impossible for him to chant the Divine names. Swamini told him to chant at lest when he was taking food. Girisa told Swamiji that even that was impossible for him to chant.

Then Swamiji told Girisa that he himself will chant Ddivine names instead of Girisa and asked him to give the power of attorney. Girisa gladly

accepted and gave the power of attorney for chanting divine names to Ramakrsna Paramahamsa and left the Asrama peacefully. After leaving the task of chanting divine names to Swamiji, Girisa Candra Bose could not sleep peacefully. When he want to a wine shop, he found Swamiji on the wine bottle, and when he went to a woman, he found Swamiji instead of woman. After giving the power of attorney to Swamiji, he found Swamiji everywhere and in every place. In the beginning, Girisa thought that it was very easy to surrender. But the moment he surrendered himself to Swamiji, he found his master everywhere and in every place. Such is the power of complete surrender.

d. Unless we are liberated from the bondage, we cannot attain Salvation

Once, Vivekananda visited Swami Ramakrsna paramahamsa and told Swamiji that after his father's death, he suffered server financial crisis. He told Swamiji to request Goddess Kali to shower Her blessings. Swamiji replied that Vivekananda himself can talk to Goddess Kali. But Vivekananda replied that since Swamiji was very much acquainted with Goddess Kali, and only he can talk. Then Swamiji met Goddess Kali and requested Her to talk to Vivekananda. The next day, when Vivekananda met Swamiji Swamiji told him that he had requested Goddess kali to talk to him. Vivekananda met Goddess Kali, had the Darsana and returned to Swamiji without placing any demand. Swamji asked Vivekananda whether he had requested Goddess Kali to shower Her blessings. Vivekananda replied that he met Goddess Kali and did not ask for any boon. The next day also Vivekananda met Goddess and did not place any demand. This continued for a couple of weeks. Vivekananda realized that the Darsana of Goddess Kali itself is enough to have liberation from these bondages i.e. if we ask for more wealth, we will have more sufferings. Hence, he realized that by asking for more wealth will enter into *Samsâra Bandhana*. He found that wealth and poverty is temporary. They increase only sufferings. Only liberation from these *Samsâra Bandhanas* is permanent.

Ramakrsna Paramahamsa was only instrumental in making Swami Vivekananda to realize that only liberation from the bondage is the way to attain salvation.

To arrive at such a conclusion,. A Guru is essential. Vivekananda followed his master's voice, and crossed the *Samsâra Sagara* (the ocean of bondages). Let us follow our master's voice and cross this ocean of *Samsâra*. O

Directives of Positive Health

Dr. Jacob Thomas

Ayurveda is not merely a therapeutic system. Rather it is the knowledge regarding the longevity of life, the ultimate goals of life and the code of directives to be followed for maintaining positive health. The code of directives prescribed by ayurveda include the health care practices to be followed on daily and seasonal basis respectively *Dinacharya* and Ritucharya. These routine health care practices will keep away diseases and help to lead a happy life. The daily routine of health care practices of *dinacharya* are-

1. Wake up early in the morning which provides pollution free and serene environment.
2. Spend a few minutes for prayer.
3. Drink a glass of water which stimulates the evacuation of bowels.
4. Sprinkle cold water in the eyes as it enhances the eye-sight.
5. Satisfy the natural urges otherwise it will result in loss of appitite, indigestion, headache, fatigue and sleeplessness.
6. Brush your teeth with medicine (paste or powder) having pungent, bitter and astringent tastes and scrap your tongue gently.
7. Apply medicine in the eyes (anjana), nose (nasya) and mouth (gandoosha).
8. Apply medicated oil on the whole body especially on head, ear (mastoid portion) and feet.
9. Take physical exercise for a specific time.
10. Children, the aged and those with indigestion should avoid physical exercise.
11. Massage your body for a short period.
12. Take bath in hot water and wash your head in cold water.
13. Those suffering from facial paralysis, diseases of mouth, eyes and ears, dysentery and indigestion are to avoid bath.
14. Don't take bath immediately after food.
15. Do yoga and meditation.
16. Take wholesome food only after the digestion of food already taken and at regular intervals.
17. Take medicated boiled water for drinking.
18. Keep physical and mental purity.

19. Do your duty with utmost sincerity.
20. Take rest when you feel tired.
21. Keep your body in right position while sitting, standing, walking, taking food and in sleeping.
22. Spend some time regularly with your family members.
23. Keep regular sleeping time.
24. Avoid exposure to wind, direct sunlight, smoke, dust and other allergic agents.
25. Do sexual act at proper time and intervals.

Ayurveda prescribes health care measures to be followed in various seasons in order to protect the body from the adverse effects due to the seasonal changes in the environment and food habbits. Eventhough six different seasons were prescribed, consideration is given t the environmental changes. Accordingly three different seasons are taken into consideration, namely rainy, cold and hot seasons. The following directives should be followed in the rainy and cold seasons.

1. Take food having sweet, sour and salty taste.
2. Take food prepared from wheat, meat and vegetables.
3. Take butter milk, honey, arista and food mixed with salt, sour and ghee.
4. Drink water boiled with ginger and thulsi and also water mixed with honey.
5. Avoid excessive physical work and exposure to cold and dust and avoid day time sleep.
6. Apply medicated oil on body and head.
7. Take full body massage.
8. Take food which are easy to digest.
9. Take purification therapies like vamana (therapeutically induced vomiting), virachana 9therapeutically induced purgation), vasti (ano-rectal administration of medicines), nasya (nasal administration of medicines), medicated fomentation and medicated bath.

The purification therapies are advised to remove the impurities which accumulate in the body due to adverse changes in the environment and food habits.

The following directives should be followed in the hot season.

1. Take food having sweet, bitter and astringent taste which is light, unctuous and liquid.

2. Use cold water for all purposes.
3. Take fruit juice, milk and sugar.
4. Avoid salt, sour and pungent food.
5. Avoid exercise and exposure to sunlight.
6. Avoid alcoholic drinks.
7. Take day time sleep.
8. Avoid purification therapies.

In addition to the routine health care directives specific today and seasons, ayurveda proposes special rejuvenative therapeutic measures for the improvement of physical health and also as the treatment of specific diseases known as pancakarma.

The pancakarma or five therapeutic methods are vast (ano-rectal application of medicine) viraechana (medicinaly induced purgation), vamana (medicinaley induced vomiting) and nasya (nasal application of medicine). Ano-rectal application is of two types– medicinal decoction (kashaya vasti) and medicated oil (sneha vasti).

This pancakarma therapy is provided with pre-therapeutic and post-therapeutic measurers. The pretherapeutic measures are snehana (external or internal application of medicated oil for producing unctuousness) and swedana (application of hot oil and other medicines coupled with massage for producing sweating).

Among the various pretherapeutic measures, the traditional physicians of Kerala made remarkable contributions popularly known as keraleeya chikitsakal. This comprises various methods of application of medicated oil, medicinal herbs and leaves and massage. They are:-

1. Pizhichil- pouring of lukewarm medicated oil in the body along with smooth massage usually done for promotion of health and in diseases like arthritis, paralysis, hemiplegia, sexual weakness, nerve weakness and invata, vatarakta and vatakapha disorders.
2. Kizhi- poultice massage is usually done for health promotion, body development, arthritis, joint pain and swelling, numbness, emaciation, loss of mobility, muscle degeneration, disc prolapse, high blood pressure, high cholesterol, skin lesions, hemiplegia and in vata, vatarakta and vatakapha disorders.
   On the basis of the difference in the medicines used, different types of poultice massages are employed.
   (a) Njavara kizhi- medicated rice massage

(b) Ela kizhi – medicinal leaf massage

(c) Podi kizhi – medicinal powder massage

3. Uzhichil – Traditional massage – massaging the whole body with hands (abyanga and udvarthana) and with foot (chavuttiuzhichil). It is generally performed for body strength, viguor and vitality, flexibility, colour and complexion.
4. Dhaara-pouring of medicated oil, butter milk or fermented rice water on the frontal region from a suitable height with uniform speed and rhythm. It is generally employed for headache, sleeplessness, diseases of the scalp, mental stress nand strain and for migraine.
5. Siro-vasti- keeping lukewarm medicated oil on the head. The oil is kept in a cap fitted in the head. It is generally performed in facial paralysis, insomnia, diseases of the scalp and nervous disorders.
6. Kati-vasti- keeping lukewarm medicated oil in the lumbar and sacral regions. It is usually done in back pain, joint pain, muscle pain and rigidity of muscles.
7. Snehapanam- oral administration of medicated oil in a proportionally increased dosage. It is generally employed in vata and pitta disorders and in skin diseases like psoriasis.
8. Karnapooranam- application of medicated oil in the ears which energizes the auditory system.
9. Tharppanam – application of medicated oil in the eyes which energizes the visual organs.
10. Medicinal fomentation and bath-energize the body, bring freshness, remove the impurities of the skin, bring colour and complexion and make it resistant to harmful organisms (immuno-modultion).

The post-therapeutic measures include dietary prescriptions, restrictions to the interactive sense organs, rest and abstinence from physical work, mental stress and strain and sexual inter course. The use of specific herbal combination for rejuvenative purpose is also mentioned after the pancakarma treatment. It is advisable to undergo pancakarma treatment and its pre and post therapeutic measures once every year extending for a period of 15 to 30 days which can prevent the degenerative diseases and helps to maintain health, viguor and vitality, complexion and colour.

The above therapeutic measures should be done only under the supervision of a qualified physician. ○

Draw Energy From the Power Of The Name

-BabaVirsa Singh

Reciting the name of God, Naam, is away of thanking and praising the Nami who is the Omnipresent and timeless Creator. When you recite Naam and love God without any motive, He cleanses your mind. There is light in your heart, and the Naam heals your mind, eliminating all negative thoughts; only positive thoughts remain. The hidden joy, love and fearlessness within you will become manifest.

It is not that God wants our praises. The effect of Naam works on us. Our body is just a house where we live. Our life is governed by our karmas, the effects on our life of our sanskaras, our habitual thoughts and actions e from this life and from previous births. Our karmas are like great waves that are not under our control.

Naam breaks those waves.

As you recite Naam when you are worrying - through word, thought and every breath - those waves start to break up here and there. As you recite Naam there is a small break in that train of thought. You feel, "It will be okay". But at this stage you are still reciting Naam only with your tongue. Your thoughts and your awareness are not on Naam, and soon your mind returns to its old pattern.

As you go on reciting Naam, you will experience a little light inside, a brief moment of samadhi, a kind of spiritual I absorption. But then,the mind t starts running away again at great speed, and the little bit of r light you perceived 'disappears'. Then a longing for God may d begin to grow in you, although it is very faint at first. As you are singing or reciting Naam, you may experience a brief communion with the Nami.

To become closer to God, focus your mind on your Isht or that form of God in whom you have faith. At first, your Isht may seem just a faint image in your mind, but gradually its presence becomes .a reality. Slowly that Power gives your mind confidence and you begin loving that Isht you are trying to focus your attention on. It takes a long time

but gradually you will feel the presence of your Isht within you. Once you feel your Isht inside you, through the power of Naam, you will begin to see that your Isht is actually controlling. Everything outside you as well. You will see your Isht is pervading everywhere and everything.

As you keep reciting Naam, whenever you begin to feel anger, greed or ego, the feeling does not last long. It moves aside. Why? Naam is washing away the dirt of your past tendencies; the Light of divine wisdom is burning up your past actions. Gradually, you cease to feel anger or greed and you feel that you are nothing great. You become very humble.

All ignorance ceases as the light of Naam manifests fully. If you reach this stage of enlightenment through continual recitation of Naam and concentration on the Nami, you will see only God everywhere. Like God, you will feel neither enmity nor fear.

You will recognise that the Nami is sustaining and controlling all life. Naam will make your actions bright and will give you clear inner vision, truthfulness, renunciation, the desire to help those in need, and the power to do anything, for the Power of the Nami has manifested in you. O

THINGS TO DO

- Spend some time with your loved ones, because they are not going to be around forever.
- Say a kind word to some one who looks up to you in awe, because that little person soon will grow up and leave your side.
- Give a warm hug to the one next to you because that is the only treasure you can give with your heart and it doesn't cost a thing.
- Remember, to say, 'I love you' to your partner and your loved ones, but most of all mean it. A kiss and an embrace will mend hurt when it comes from deep inside of you.
- Remember to hold hands and cherish the moment for someday that person will not be there again.

They Only Live Who Live For Others

-*Shanshank Grahacharjya*

The Healing Touch

I HAD been to a small town a few kilometres from the silver city, Cuttack, in connection with the purchase of a plot of land. A property broker guided me to the patch of land, which lay near a rice mill. After locating the plot, we took a short route to the main road. There was a hillock of paddy husk behind the rice mill. A few poor women were gathering what broken rice they could find in the husk. We noticed them but paid them no heed. They saw us, but tried to hide themselves, presuming that we were employees of the mill, who often harassed them. I was told that the employees restrict the women from such collection.

It was a bright March morning. The rays of the morning sun, the feel of the cool breeze, the fresh look of dew-bathed green grass all around were taking me away from myself Moreover, the fancy words of the broker coupled with my soon-to-be fulfilled aspirations towards becoming a landlord were exciting my mind. I was completely lost in our discussions. Suddenly I felt a burning sensation on my feet. I took a few bold and fast steps, each step plunging into the husk-ash pile, causing serious irritation. Neither the broker nor I had sensed the fire beneath the surface of the paddy-husk hillock.

I shouted at the top of my voice for help. To add to my misery, I was wearing a pair of chappals instead of shoes. I started jumping in pain, trying to run away from there. Each jump was leading me to a hotter patch of embers. Each step was taking me to a more difficult situation. My chappals had fallen off my feet. I hardly noticed what the poor broker was passing through, but just warned him to take care and run away.

Suddenly I saw a couple of women rushing to rescue me. 'Hey, come this way: they shouted. I took a rum. They extended a stick and pulled me to-safety. Within a second, I was next to them. Risking exposure to the fire, one of the women dragged my chappals dear while I was pleading with them to leave the footwear where they were. Another woman wiped the sweat running down my face with her sari and started fanning me. She cleaned my feet and advised me to put them under cool, running water for-some

time-something that the broker was already doing at a stream nearby. He too had injuries.

I was feeling miserable. I asked the woman why she had risked herself She paused. Her words came from deep within her heart. Her throat was choking up. She responded, 'Would I not have done that, had you been my son?' and touched my chin with a smile. Never had I experienced such an unambiguous, innocent, and confident touch and smile in my life. What a healing touch! Punched with physical pain and mental joy, tears oozed out of my eyes. I fail to understand why women-mothers-always risk themselves to eliminate the suffering of others!

After administering first aid, the staff of the rice mill shifted us to the nearby hospital. We took a few days' rest as per the doctor's advice. Now we are fine. I have been to the rice mill many a time r after that, but have never seen those women again.

I wonder if they have been prevented from visiting '1:-, the area after that incident. They saved me from 1— fire; I do not know what measures they take now to extinguish the fire in their stomach!

A Slap on the Face In day-to-day life, our profession puts us in many embarrassing situations which could normally be avoided. But we make false commitments-most –of the time with no bad intentions. We judge ourselves by our intentions, but others by their actions.

On introspection, we find how hollow we are-and how genuine are they whom the so-called professional humbug has hardly touched.

It was a nearly a decade ago that I went on a visit to a remote village in Jaisalmer district of Rajasthan to monitor the feeding programme under the Integrated Child Development Services (ICDS). There were hardly any other villages dose by, and one had to travel 10-15 kilometres to reach the next one.

The village was in a desert area, close to the Pakistan border. I reached the village at about 9 a.m., without having given any notice beforehand. I finished my work, which took about an hour or so. As a part of the job, I interacted with the villagers, especially the mothers who benefited from the programme. A group of women, on learning from my chauffeur that I had not yet had breakfast, insisted that I have roti and chhanch (buttermilk) with them. Anticipating a delay in the programme and having plans co cover a few

more villages, I politely requested them to excuse me for not being able to honour their invitation. With a customary smile on my face, I pleaded in many ways to allow me to proceed further. By then, we had walked through half of the village. I had put one foot inside the vehicle and was managing to wave hands to say a 'goodbye'.

One middle-aged woman had been holding my hand affectionately for a long time. I tried to escape from her by saying, 'Dubara jab aunga to zarur kha ke jaunga; When I come next, I shall definitely have food at your place.' She threw my hand suddenly and countered, with moist eyes, 'Tum to barish ki tarah ate ho; You come like the rain (in the desert).' The whole situation turned grave. No more laughter, no more giggles. It was serious. I was caught! I had no other option but co follow her like an innocent child to have a bite of the roti she had kept, as if only for me. Another woman fanned me with a hand-fan which she had nicely designed.

I am unable to balance the value of that roti and glass of buttermilk with the tons of food materials provided under the feeding programme. We, the so called officials, show our superficial busy schedules and make many false promises and give vague assurances without respecting the sentiments of others who genuinely render their love and affection even to a stranger like me. I always remember this tender slap on the face whenever I visit a village.

A Lamp for Sanjib

Sanjib and I had been good friends since our school days. Both of us were branded as naughty, though averagely studious, amongst our classmates. Sanjib was an athlete. He had many medals to his credit. He had a handsome and well-built physique. We had common interests in cricket and theatre. However, we changed streams in higher secondary studies, and changed colleges for graduation.

Later, Sanjib fell into bad company. He was exposed to and got habituated to smoking and drinking. He could not score well in examinations, though he managed to complete his graduation. His late night arrivals at home were obviously not acceptable co family members. He preferred to stay in a rented house. Friends initially paid the rent and converted the house into a bar. Later on, he had to pay all bills, including those for food and beverages for others.

Common friends used to say then, 'Sanjib behaves well only, with Shashank.' Yes, I believe so too. I had never seen him the way he was known amongst others. A couple of times, I attempted to know from him why bad words about him were spreading around. Silence was his only answer all through.

Five years ago, after a decade of separation, we met again when I spotted Sanjib in my home town, Cuttack-the millennium city whose people are known for their bhai-chara (camaraderie). He was quite disturbed and tense. I learnt that he had been staying in the city for the last six months. He had his own reasons for not keeping in touch with me. In fact, he did not have contact with anyone even in the mohall a (colony) he was staying in. No one had any idea about what Sanjib was up to 'Or what he was doing. In the city 'of bhai-chara, he was leading the life 'of a bechara, a paar fellaw withaut a friend.

Inhabitants 'of the mohalla did finally get to knaw Sanjib. It happened like this. There was a widow in her early forties, Basanti by name, who was staying in the same mohalla a few yards away from Sanjib's naam, with her 'Only san Babula, a boy 'of twelve. Basanti and Sanjib had not met; neither was Babula friendly with Sanjib. When Sanjib returned to the mohalla after a long hectic jaurney and two sleepless nights, he found, to his great surprise, the whole mohalla passively witnessing the distress 'of a widow. Babula had contracted cerebral malaria and died. There was no 'one to help Basanti in conducting Babula's last rites. Though there were many young, educated, and sensitive men around, each one had the fear of being questioned or interrogated by others. Many ifs and buts were bothering them. She had none to give solace to her. Sanjib could not stand it any longer'. He had the strength and conviction to face any interrogation. He took the dead body to the crematorium next to the Dakshina Kali temple, met all the required formalities, and conducted the rituals. Others had sympathized, but Sanjib acted.

I learnt much later that Sanjib lost his life in a road accident. I do not know who conducted the last rites for him. Who was or were his friends then? Definitely not me, though I claim to have had good friendship with him! But of one thing I am sure: Basanti would have offered a lamp for him at the Dakshina Kali Temple if she had heard about Sanjib's death. ○

Krishna the Liberator Lightens Burdens

-Shri Shri Anandamurti

Who is bhagavan? Anyone who has qualities of aishvarya, virya, yasha, snree, jinanam and vairagya. Wno is Purna Bhagavan? Only Krishna or Parthasarathi, Arjuna's charioteer. He is "Krisnastu Bhagavan svayam" God incarnate, Purna Brahmn, Purna Bhagavan.

Arjuna, as per his vow, was to embrace' the funeral pyre immediately after sunset if he failed to keep his promise of killing Jayadratha. Suddenly people saw sky darkening; the sun was visible no longer. The sun seemed to have set. Alas, Arjuna would die, honouring his promise.

But it was Krishna who had covered the sun with His Sudarshana Chakra, His special discus, because He willed it so. Jayadratha, who was hiding all day, came out, because now -he was safe; Arjuna would have to immolate himself at sunset. Arjuna did his last pranam to Krishna, moving towards the pyre. Krishna said, "Arjuna, you are a Kshatriya, so carry your Gandiva (bow and arrow) even at the time of death". Arjuna did so. When he was to jump, the sun emerged from the clouds. Krishna asked Arjuna to take aim at Jayadratha. Arjuna was able to keep his promise.

To perform such a miraculous feat by going against the natural order cannot be accomplished by bhagavans.Only Parama Purusha can do this. Dozens of similar stories can be found in the Mahabarata. Maharshi Garga added:

"Krishna has no parallel". While adoring a baby we say, "How lovely is this child! It is as lovely as the moon". But Krishna's beauty far exceeds that of the moon. About a very intelligent person we say, he is like Veda Vyasa, who compiled the Vedas.

By comparison, Krishna was by far the most intelligent personality in existence.

Krishna promised that He would free sinners from sins, so the future of humanity is unmistakably bright. No one should worry about the past. If people constantly think of their Ishta and repeat their Ishta mantra with conceptual understanding, their future is glorious. They will have no cause to lament or crYJip sorrow. Only Parama Purush~ can state this so emphatically.

, Krishna's assertion shows that He is not a god, but GOd Himself. He is the highest expression of spirituality. If we call Parthasarathi as bhagavan, it will bring Him down to the level of a Mahapurusha. He is Purna Bhagavan, unparalleled. Krishna says in the Gita that all must follow the path shown by Him: "Casting aside all other mental preoccupations accept Me as your last refuge. I will liberate you".

Krishna assures: "I incarnate Myself in this world from age to age for the annihilation of the wicked and the protection of the virtuous". He calls upon people to follow in His footsteps. He gives a clear assurance: "If even wicked persons worship Me with a concentrated mind, I will liberate them from worldly bondages". Kṛishna says, "If you walk down a road you are bound to get dirty. Those who have abandoned all their previous sins and come to Me, accepting Me as their final refuge, I will free them from the bondage of sin. Their future is glorious".

Only Parama Purusha can assure jivas so unequivocally for He is the veritable manifestation of divinity. "I will take away your sins".

No one but Krishna, the Supreme Entity, could say this. No one has ever said this in the past, nor will anyone say it in the future. "I will liberate you from all sins. You have no cause to worry". O

SACRED SPACE

Sea of Tragedy

Today, we pick bodies, not seashells from the sea shore... It is we who are in mourning- then why do you sport the colour black?

Kumarikandam, Kabadapuram, Poompuhar: you swallowed them all. Unsatiated, you sent dinosaur waves to devour the innocent. ...O mighty sea, what have we done to warrant this severe punishment? Sumatra was once conquered by the great Raja Raja Chola.

Is the devastating tsunami Sumatra's belated vendetta?

...We shall overcome all of Nature's calamities: We shall return to the seas

To fish, to travel... But Never to dissolve the ashes of the dead.

Why The Rig Veda Is Common Heritage

-Compiled by M.L. Bagri

The Rig Veda was recently e declared by Unesco as part of the n world heritage. A meeting of the n US Senate commenced with a recitation of Vedic hymns. The n truth revealed by the Vedas b is universal. In the Vedas God is said to be aproshivan, the One who never t leaves us, in life, death or otherwise. Though implicitly separate, the Creature (soul), nature and Creator are inextricably and I inseparably mingled in a scientific condition called relativity. In Vedic literature this relativity has been described as achhidrena, the unpierceable and impenetrable manifestation of God. Hence, there remains no doubt or question about the existence of God.

A few attributes and characteristics of God guide us to understand the formless One clearly. God's foremost adjective is antmah, which means He ~ is at the core of every atom, and the term for this quality of God is known as napti. He is niyantah, the one who controls, the subtlest and the largest infinite entity of the cosmos. Soul provides life to the body it dwells in, but who gives life to the soul? Purusha is soul and Uttam Purusha or Ultimate sustains the soul. The shape of Godis actually unimaginable, achintya, therefore He appears to us according to our own imagination and choice. Immutable are His attributes. None is nearer than Him and no one is farther either, anantah. The all-powerful, reservoir of consciousness is amritam and adabhya, that is, the loner without death and irrepressible.

God is paridheya, whom we can receive from all sides, at any time, at any place, within the soul. He is Truth, Knowledge, Infinite and Ultimate: sat yam, gyanam, anantam, Brahm.

The only One is balancing the planets and rolling the cosmos continuously. He is explained as unparalleled divine nectar or rasanam rastamah. His name is greatest and potent of all natasya pratima asti, yasya naam mahadyashah. He is the basis of all creatures, One seen in many, and many in One: Aiko Deva sarvabhuteshu, aiko bahusyam. The Vedas are the fountainhead of all knowledge. God's primeval and foremost name is Aum, also known as Pranavah. Aum encompasses all including sound, energy, matter, space, consciousness, air. The chanting of Aum has been termed as Udgeetha. This chanting can be mansik also\which means silent repetition in mind imagining overall swarupa, form of the formless God.

Describing God's vastness and greatness a Vedic hymn says: 'You are never away from us but strange it is that we cannot see you. Your divine poetry (creation) never dies'. When your heart and mind become pure you become eligible for realisation and His sacred company. He dwells in a sublime thought and unadulterated heart. Doing righteous deeds

and surrendering unconditionally before Him qualifies the seeker to the rarest exalted position of liberation, severing connection with mundane world. Son of God, may you become like God, the deathless (but not God, since none can be Him). God has made man in His image. Image can tally the object or subject but cannot adopt the same stature.

God belongs to the innocent (Punjabi proverb: bhole da rub) and the pure and He protects them too. God revealed Himself to sages in their meditation and they penned down Truth about Him and the universe. O

Ego to Egolessness

On the human plane we can all understand and admire the ideal of unselfishness, or egolessness. in fact. it is the moral and social orders which form the preliminary basis for spiritual life; and the principle underlying that moral or social life is egolessness, selflessness. The more we deny the little self, the more we free ourselves from the ego,.the greater our expansion. A selfish and ignorant and egotistic person also knows ,and understands the' ideal of selflessness; by the very fact that he resents selfishness in another. Therefore, until we free ourselves from this ego, there can be no spiritual expansion. It is our experience in the ordinary 'plane that the more we deny ourselves, the greater is our' happiness and expansion; but the real task comes when in understand that this little self must be completely wiped out; that this little self is the ignorant self and that it must die in order that we may be born in spirit. What is this birth in spirit? It is egolessness. Ego is the barrier between the spirit and the flesh. Remove that barrier, remove the obstruction, and your life will be flooded the spirit.

There are two methods by which this ego can be wiped out. These methods are known as Jnana Yoga, the path of knowledge, and shakti Yoga, the path of devotion and self-surrender. ....Jnana Yoga teaches us to deny that little self, and assert God or the higher Self by analysis, by trying to find that unchangeable Reality which is within. This sense of ego is an illusion. It has not that same degree of reality that the Atman or the real Self has, therefore, why cling to this false self? For by 50 doing, you remain subject to the wheel of birth and death, happiness and misery. ... The truth of the Self which is one with God is to be heard about from teachers who have known that Truth.... First we must hear about it from the scriptures and teachers; and then we must reason upon it. Mere -intellectual acceptance will not do. Then, realizing that there is that one unchangeable absolute Reality, we must meditate upon that truth.

With Bhakti Yoga, the path of devotion......we find that no attempt is made to rid ourself of the ego at the very beginning. There are two egos, which Sri Ramakrishna called the unripe ego and the ripe ego. The unripe ego is that which denotes selfishness-that sense of ' me and mine; and of this ego we must rid ourselves; the ripe ego is that which unites itself with God; 'I am a child of God, I belong to God; and so forth. This ripe ego ultimately leads to egolessness.

-Swami Prabhavananda

Spiritual Nationalism in Practice

-Compiled

Since the Vedic time the concept of nation in India is spiritual, cultural. It was never just territorial or state-nation concept. The Hindu ethos is 'One has manifested as many' and therefore each and every thing is sacred. Thus this inclusive approach of Hindutva makes it possible for a Hindu to be highly spiritual and universal and at the same time intensely nationalistic. The last century alone saw some spiritual giants, like Swami Vivekananda, Maharshi Aurobindo and Sri Guruji who were also great nationalist. That Spirituality sans Nationalism is incomplete and unsustainable is a fact proven by history. Verily for this reason, our society has been exhorted time and again by Sri Krishna in the beginning of Kali Yuga, Sri Adi Sankara, Swami Samartha Ramdas, Sri Vallabacharya, Sri Vidyaranya, Sri Guru Gobind Singh in the past few centuries, right up to Swami Vivekananda, Maharshi Aurobindo and Sri Guruji in the last century, to shun the tamasic inaction in the guise of spirituality and fight to uphold and protect Dharma. For them, spirituality is the content and nationalism is the container.

Working for the cause of humanity is the greatest form of worship. Unlike many reactionary reformers, Sri Guruji took the sane decision of sticking to the value system, while working to reform the society ridden by many evils, which parade under the garb of religion. Swami Vivekananda had told "Elevate the masses without injuring their religion" Sri Guruji through various initiatives in RSS or through RSS put this principle given by swami Vivekananda in practice.

Spirituality is vision of Oneness, feeling from the heart for all expressed in the actions as service for all. In the life of Sri Guruji we see this expressed even at he national level. The following articles will clearly exemplify the wonderful approach of Sri Guruji in reforming the society, his spiritual nationalism in practice.

Westernization in the garb of modernization

Leaving our practices. we 'are falling prey to the so-called modernism. This is what has happened to many non-western societies. Samuel Huntington in his very scholarly thesis Clash of the Civilisation" says that the non-western societies in the first phase of modernization tend to

give up their cultural practices. But as their economical condition improves and the confidence is built up. then in the second phase of modernization these societies become culturally assertive. Hindu society as it is improving economically; it would become culturally vibrant too.

But cultural vibrancy is not in cliches or in exhibitions. In this regard Sri Guruji's guidance that culture is in restraint of mind and not in exhibitionism is very important. He said, "And then about our family traditions and devotional practices.

Whatever be our personal or family deities, We have to conduct its worship With great devotion and keep aglow our holy family traditions. How tragic it is to see these things disappearing nowadays! In the South at least, we often see the Tulasi Brindavan in front of our houses. As dusk sets in, our mothers light a lamp in front of it. Often we listen to the sweet sounds of bells in the pooja-griha and witness the devotional worship going on there. But in the North, this has become a rare sight to see. "Modernism" has verily banished God from our homes.

"Modernism" is taking the toll of many more of our cherished values of life. A couplet in Jnaneshwari says, "A pious man spreads a cover of modesty over his good actions just as a virtuous lady covers her body. "It describes the nature of virtuous womanhood. But "Modern" women think that "modernism "lies in exposing their body more and more to the public gaze. What a fall! (BOT - p488)

We also see many of our leading 'cultural men' associating themselves as judges in the 'Miss India' beauty contests. It seems, in their concept of our culture, of the ideal of our Womanhood, a Sita or a Savitri, a Padmini or a Nivedita has no place. In that contest. indeed we miss the real beauty of India! (BOT-p54)

It appears modernism has come to mean, In our country, only blind aping of the West and nothing else. In many of the modern families the children address their mothers as 'mummy'. Do we know what the word originally conveyed? In Egypt, there are massive cemeteries entombing their old kings. They are called pyramids. The corpses placed inside are called 'mummies '! And here we address our living, loving mothers as mummies! (BOT - p488) O

Tone your system to overcome stress

Compiled by : Sri M.L. Bagri

When a material is subject to a load, the material gets stressed. In mathematical terms strain = stress/ elasticity. Strain can be reduced either by reducing the adverse effects of the sources of stress and increasing the strength of the material, or both.

Everyone of us is subject to stress. How successful you are in coping with stress depends on how you prepare your system - body, mind and soul to meet with challenges in a way that it is within your tolerance threshold. Understand stress and find ways to overcome it.

The sources of stress are at work, home and society. Life style plays an important role.

Stress could induce depression, withdrawal and anger. Diseases like peptic ulcers, asthma, diabetes, cancer and coronary heart diseases are also the outcome of stress. Stress is the combination of psychological, physiological and behavioural responses to events that challenge us. There is also positive stress before an examination, game or sports event that in fact boosts morale and induces performance.

What are the techniques we can apply to ourselves to guard against undue stress?

We could will ourselves to change our values, habits, attitudes and behaviour to suit our resolve to beat back stress. Create a sense of awareness and subject yourself to a reality check to identify what contributes to stress in your life.

Take responsibility for your actions. Try to explore the best way to deal with stressful situations. Practice of yoga and meditation enables the development of equipoise. Yoga promotes evenness of mind both in adverse and favourable conditions. Krishna's Bhagavad Gita advocates practice of yoga.

Follow the three super virtues advocated in the Upanishads: self-discipline, compassion and selflessness. Gradually, you start developing a positive disposition, and you are better equipped to check anger and depression. You gain self-confidence.

Prayer is one of the ways by which you could cultivate greater inner strength. Regular physical exercise, too, helps tone body and mind. Meditation

stimulates the subconscious. All these methods help you unwind, and in the process stress is shown the door.

To remove stress from your system cultivate health-promoting habits like daily exercise, breath control, meditation and eating the right food, Moderation is good but avoiding tobacco use could have long-lasting positive effects.

Try to control your system instead of the system controlling you. Enrich your work with continuous learning. Have clear goals. Base your relationships on mutual trust and support Face life's trials and tribulations with courage and determination. O

Things To Do

* Spend some time with your loved ones, because they are not going to be around forever.
* Say a kind word to some one who looks up to you in awe, because that little person soon will grow up and leave your side.
* Give a warm hug to the one next to you, because that is the only treasure you can give with your heart and it doesn't cost a thing.
* Remember, to say, '1 love you' to your partner and your loved ones, but most of all mean it. A kiss and an embrace will mend hurt when it comes from deep inside of you.
* Remember to hold hands and cherish the moment for someday that person will not be there again.
* There is no such thing as, instant improvement in life. And as you know in agriculture, growth can only happen little by little over time....
* The things that you do daily may seem small and insignificant, but over time people will be surprised to learn how much you have "grown in life."
* Focus on the small things!, you do daily. The key word here is daily, If you do not have the persistence to do these small things consistently, you won't be able to see the results over the long term.

Making Yourself

Compiled byM.L. Bagri

Self-discovery and self-improvement go hand in hand, and as every effort unfolds-new powers that we had not dreamed we possessed, we are encouraged to use them and thus pave the way to further achievement. It is true that some are born with a silver spoon in their mouth and others with a wooden one, but no man is the puppet of a blind fate or destiny. However, poor one's lot or however handicapped he may be, he has that in him, which makes him master of destiny. The mottoes, which inspired great men, often give us glimpses of the methods they employed in hammering out their places, in attaining greatness, and the gist of them is "Work! Work! Work!

Always at work". You, who are entering high school, seminary or college; you who have been graduated from such institutions; you who are longing to become educated. useful men and women, how much are you willing to do, to endure, to suffer in order to bring to fruition the full limit of your possibilities? You who long to be a great teacher, a writer, an artist, a musician, a merchant, an engineer; how much blasting and chiseling and sandpapering and polishing are you willing to bestow on the rude stone of your incipient talents until you become as a beautiful finished statute compared with the unhewn marble in the quarry? If you know that you want to do and train every power of mind and body to that end, no power on earth can defeat you. O

Be you holy and, above all, sincere and do not for a moment give up your trust in the Lord and you will see the light. Whatever is truth will remain for ever; whatever is not, none can preserve. Whatever others think or do, lower not your standard of purity, morality, and love of God. No one who loves God need fear any jugglery. Holiness is the highest, and divinest power in earth and in heaven. 'Truth alone triumphs, not untruth'. Through truth alone is opened the way to God.' Do not care for a moment who joins hands with you or not, be sure that you touch the hand of the Lord.

-Swami Vivekananda

Accept What Cannot Be Changed

-Compiled by M.L. Bagri

The Gurbani says: "Whatever happens naturally is the "Sahaj subah jo hoe so ho". This is also a mantra being featured in human resource development (HRD) courses as it is considered an effective' antidote to daily tensions. These words could foresee the momentum of life and the tumult of stress and ensuing frustrations. Tension more often than not gives way to frustration, causing unhappiness. Most of us find it difficult to cope with daily frustrations. Often, we pursue goals and desires that are unrealistic. We pursue them with faith and determination hoping that persistence will yield results, which is not a bad thing. However, when the goal seems distant we should not bang our heads against the wall in frustration.

Osho said "No matter what (you do, life turns out the way it turns out. Struggling with, life does not help at all". A miracle must happen. But when it does not, the best thing to do is to fall in line with karmic happenings. Destiny has a role and is subject to certain limitations.

I once asked my guru, "Can I you change the destiny of your f disciple?" The answer was "Why? A true guru will not interfere f with the karmic destiny of his I disciple. He will only help him) spiritually". A young, talented girl who was frustrated with unrequited love, as keep her guru: "Why a doesn't God answer my prayers?" a The guru replied, "If a child t wants to play with a knife, I will his mother give it to him I even if he throws a tantrum? a No. While working out your destiny, you might come across I better choices. May be there is something better in store for you. Let go. Start afresh before the hurt becomes a wound".

In the pursuit of our dreams we encounter delays, blockages, and obstructions. We throw up our hands in frustration and scream "Why can't I do it?" Don't push yourself against an unyielding wall. Take time off. Create a space. For on this journey; there are waiting rooms, transit lounges, and change of tyrst on the way. Time, trust and tryst must synchronise with yield fulfilment. By that time you may have discovered a new purpose, a new goal, or even a new obsession. You may even find a spot of bliss.

So Sahaj subah jo hoe ho. When you fall, new line with your! furmic destiny, life is lived effortlessly. It is said that happiness lies in the rhythm of life. Life is a flow. Cascade over the obstacles. The rhythm of life gains grace and agility, when you move on without the baggage of frustration.

Frustration can be as small as a prolonged wait for a raise in your salary or it may be as shattering as failure in a deep relationship. Frustration is self consuming. Effort has great value. But effort should be productive. Follow the law of least wastage. Despite that if things go wrong, follow the law of substitution. When nothing seems to work, follow the law of acceptance. Believe that whatever is in your destiny; acceptance becomes necessary. Often, when you cooperate with your karmic destiny and internalise the law of acceptance, things just start happening. Your inner struggle is over. And your goals and intense desires are fulfilled in a mystical way. O

Important For Members (Please Note)

Subscription and Facilities Revised W.E.F. 1.04.08

Keeping in view the rising cost of establishment, the management has revised the subscription rates and the facilities also available to different categories of members.

Annual Subscription of ordinary members increased to Rs. 1000/- side by side ordinary members can avail the facility of free hospitality for three days in a year. (Husband & Wife)

Life membership subscription is increased to Rupees THIRTY THOUSAND and the free hospitality period is increased to seven days in a year for own family.

Donors who have donated for the construction of the ashram can enjoy free hospitality for 15 days in a year (own family).

Three days of annual function i.e. 11,12 and 13th April will always be counted and adjusted against free hospitality. Free hospitality includes stay in furnished room, Breakfast, lunch, evening tea and Dinner. Onion and garlic is not permitted in our kitchen. Food is as good as home food. Stay in the ashram would be as per the rules and regulations of the ashram and security drill will have to be observed. Persons staying or enjoying free hospitality will have to keep the premises neat and clean and not create any noise in the ashram. Any loss caused to the ashram property will have to be reimbursed on the advice of the management. Deficiency or complaint should be addressed to the managing trustee. For any concession, persons can approach. Swami Senapatiji who is always available in the ashram. Any member wanting to the increase the free hospitality period will have to pay the regular charge applicable from time to time. Please conserve water and power which is twenty four hours available. All rights of admission are reserved

योग निकेतन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित
योग के महत्वपूर्ण ग्रन्थ

Original Hindi Text

	रूपये
आत्म विज्ञान	200.00
वहिरंग योग	300.00
ब्रह्म विज्ञान	200.00
निर्गुण ब्रह्म	100.00
प्राण विज्ञान	80.00
हिमालय का योगी (प्रथम भाग)	180.00
हिमालय का योगी (द्वितीय भाग)	100.00
दिव्य ज्योति विज्ञान	100.00
दिव्य शब्द विज्ञान	75.00
व्याख्यान माला (तृतीय भाग-A)	60.00
व्याख्यान माला (चतुर्थ भाग-B)	60.00
व्याख्यान माला (पंचम भाग)	60.00
योगेश्वरानन्द योगामृत	30.00
अमर जीवन कथा	20.00
अन्तःकरण चतुष्टय	10.00
योग और साधना	30.00
योग विज्ञान	150.00
हठ योग विद्या	100.00
पातंजल योग दर्शन	100.00
ध्यान योग साधना	60.00
अन्तरात्मा की खोज	20.00
ब्रह्मयोग	30.00
धर्म और साधना	100.00
अखण्ड–साधना (द्विमासिक) वार्षिक	150.00

Engllish Translation

	Rs.
Science of Soul	200.00
First Steps of Higher Yoga	250.00
Science of Divinity	200.00
Science of Divine Sound	100.00
Science of Vital Force	100.00
Himalaya Ka Yogi (Part I)	100.00
Himalaya Ka Yogi (Part II)	100.00
Science of Divine Light	65.00
Essential Colourlessness of the Absolute	60.00
Beads of Sermons (Part I)	40.00
Beads of Sermons (Part II)	50.00
Beads of Sermons (Part III)	50.00
Beads of Sermons (Part IV)	50.00
Beads of Sermons (Part V)	40.00
Yogasan Chart	10.00
Akhand Sadhana (By monthly) English/Hindi	150.00

Yoga Niketan Trust

Rishikesh - Uttarakashi - Gangotri

Premier Institution for Teaching of Meditation - Yoga - Pranayam

P.O. Shivananda Nagar, Muni-Ki-Reti, Rishikesh - 249 192 (INDIA)
Ph.: (0135) 2430227, 2435072
Guest House: (0135) 2433537
Rishikesh 2434778, 244239
Uttarkashi ☎ 01374-22615, Manali ☎ 01902-253239
Gangotri ☎ 013772-22213 Delhi ☎ 011-25226192, 25225059

Regd No-71413/99 dated 12.8.1999

योग मन्दिर

Ganga Side View of the Guest House